शशिगुप्त

(पाँच अंकों में एक ऐतिहासिक नाटक)

—:०:—

गोविन्ददास

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

मूल्य १।।)

प्रथम संस्करण सं० १९९६ सन् १९४२
द्वितीय संस्करण सं० २००१ सन् १९४४

Printed by
RAMZAN ALI SHAH at the National Press,
Allahabad

2 M. 28

ऐतिहासिक प्रस्तावना

कभा कभी इतिहासकारो की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटककारों को ऐतिहासिक घटनाओं के असली स्वरूप का अधिक अनुभव होता है। वन के वृक्षो को गिनने मे सम्पूर्ण वन के चित्र को भुलाया जा सकता है। यही दशा कभी कभी इतिहासकारो की हो सकती है। छोटी-छोटी वातों की खोज में घटनाओ का संपूर्ण चित्र उनके ध्यान से दूर हो सकता है। पर नाटककार को तो उसका सदैव ध्यान रखना पड़ता है।

नाटककार एक कलाकार की हैसियत से घटनाओ को कुछ तोड़ मोड़ कर और अपनी कल्पना से त्रुटियो को दूर करके ही एक समूचा चित्र बनाता है। इस कारण ऐतिहासिक नाटक में चित्रित सभी घटनाएँ तो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ठीक नही हो सकतीं, पर अवश्य ही एक चतुर नाटककार मुख्य ऐतिहासिक घटनाओ की सत्य रूप-रेखा ही खींचता है। इसमे तो सन्देह नहीं कि इतिहासकारो के संग्रह किये हुए ऐतिहासिक घटनाओ के पिंजर को ऐतिहासिक नाटककार सजीव चित्र के समान हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। यही बात सेठ गोविन्द दास जी ने मौर्य काल के इतिहास सम्बन्धी हमारी कुछ खोजो के साथ इस नाटक मे की है। इस नाटक के महत्व को पूर्ण रूप से समझने के लिये इन खोजों और इस समय के इतिहास के नये दृष्टिकोण से थोड़ी बहुत जानकारी आवश्यक है।

३२७ बी० सी० के लगभग यूनान का अधिपति सिकन्दर (एलेक्जेन्डर) ईरान के विशाल साम्राज्य को कुछ घातक प्रहारों के पश्चात् दमन कर पश्चिमोत्तर भारत में आधुनिक चारिकार के पास आ उपस्थित हुआ। यहीं से उसका भारतीय संग्राम शुरू होता है। भारतवासियो से तो उसका इससे पहिले ही सपर्क हो चुका था। प्राचीन ग्रीक इतिहासकारो से मालूम होता है कि पश्चिमोत्तर भारत की कुछ सेना सिकन्दर के विरुद्ध ईरानियो के साथ लड़ने के लिये पूर्वी ईरान में गयी थी। इस सेना का नायक शशिगुप्त था, जो ईरानियो की अन्तिम हार के बाद सिकन्दर से जा मिला, और जिसने

जैसा हम आगे चलकर बतायेंगे, सिकन्दर के भारतीय संग्राम में भी महत्वपूर्ण भाग लिया था।

सिकन्दर के भारतीय आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत आर्य-सभ्यता का केन्द्र था। तक्षशिला जैसा जगत् विख्यात विद्यापीठ यहीं पर था। पाणिनि जैसे कितने ही विद्वान् भी इसी जगह पैदा हुए थे। उस समय इस प्रदेश में स्वतंत्रता प्रिय अश्वक आदि वीर क्षत्रिय जातियाँ रहती थी। अश्वक जाति विख्यात सूर्य वंश, जिसमें मानधाता, दिलीप, रघु और राम हुए थे, की ही एक शाखा थी। शशिगुप्त इसी अश्वक जाति का अधिपति था। सिन्ध नद तक इन वीर जातियों ने सिकन्दर का पग पग के लिये घोर विरोध किया। पर उसके बड़े सैनिक बल के आगे वे सफल न हो सके और घोर अमानुषिक अत्याचार करता हुआ नौ महीने के निरन्तर युद्ध के पश्चात्, सिकन्दर सिन्ध नद के तट पर पहुँचा। उसने सिन्धु के पश्चिमी किनारे के परे आरनस नाम के एक सुदृढ़ गढ़ को, जो भारत से उस ओर ईरान जाने के मार्ग का नियंत्रण करता था, शशिगुप्त को अपना क्षत्रप बना उसके हाथों में सौंप दिया।

सिन्धु को पार करने मे सिकन्दर को कुछ कठिनाई न हुई, क्योंकि उसके पूर्वी किनारे पर स्थित तक्षशिला देश के नरेश आम्भी से उसकी पहिले ही से मित्रता हो गई थी। आम्भी के, इस नीच और देश-द्रोहात्मक आचरण का कारण तक्षशिला के पूर्व मे स्थित अपने शक्तिशाली पड़ोसी पोरस के प्रति उसका द्वेष था। आम्भी सिकन्दर की सहायता से पोरस को नष्ट करना चाहता था।

पोरस की सिकन्दर के भारत मे आने से पूर्व ही अपने पड़ोसी अभिसार नरेश से मित्रता थी। और इन दोनो ने मिलकर आस-पास के प्रदेश जीतने शुरू कर दिये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अब अभिसार-नरेश कुछ अनिश्चित था कि वह सिकन्दर या अपने पुराने मित्र पोरस का साथ दे। अभिसार-नरेश सिन्ध नद के पश्चिम मे निवास करने वाले अपने पड़ोसी अश्वको से भी

मित्रता स्थापित कर चुका था। उसने सिकन्दर के विरुद्ध अश्वकों की सहायता के लिये सेना भेजी थी और सिन्ध नद के पश्चिम से भागे हुए लोगों को अपने यहाँ आश्रय भी दिया था। दूसरी ओर सिकन्दर के सिन्ध नद पार करने पर उसने उसे उपहार भेजे, परन्तु साथ साथ उधर उसके भेजे हुए दूत को उसने कैद कर लिया और पोरस से जा मिलने की तैयारी करने लगा। सिकन्दर को उसकी दोहरी चाल का पता लग गया और पूर्व इसके कि अभिसार-नरेश पोरस से जा कर मिलता, सिकन्दर और आम्भी शीघ्रता से अपनी सेनाओं सहित झेलम के तट पर पोरस के सम्मुख आ डटे।

इस प्रकार पोरस अकेला रह गया। सिकन्दर की सेना पोरस की सेना से कई गुनी अधिक थी। सिकन्दर ने १२०००० पैदल सेना और १५००० घुड़सवारों के साथ भारत में प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त झेलम के युद्ध में उसके साथ तक्षशिला की सेना भी थी। पोरस के पास केवल २०००० पैदल सेना और २००० घुड़सवार थे। फिर भी पोरस उसका एक शक्तिशाली शत्रु था। प्रारम्भ से ही सिकन्दर को झेलम का युद्ध अति कठिन प्रतीत हुआ। पोरस की उपयुक्त रूप से व्यवस्थित सेना के मुक़ाबिले में झेलम को पार करना ही सिकन्दर को असाध्य हो गया। सिकन्दर की कुछ सेना नदी के मध्य में स्थित एक द्वीप पर पहुँच गयी, परन्तु उसे शत्रुओं ने घेर लिया, जो अविदित रूप से उस द्वीप तक तैर गये थे। इन लोगों ने यवन सैनिकों पर वार कर उन्हें धराशायी किया। जो बच भी गये वे या तो धारा के तेज़ प्रवाह में बह गये या नदी की भँवर में वहीं बैठ गये। पोरस ने नदी के किनारे खड़े हो कर युद्ध के इस समस्त उतार-चढ़ाव को देखा और इससे उसका आत्म-विश्वास खूब बढ़ गया।

पुनः कई दिन की प्रतीक्षा के बाद एक दिन सिकन्दर रात्रि के निविड़ अंधकार में नदी पार कर गया। पोरस ने अपनी सेना को सिकन्दर की सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। प्रथम

ही वार में उसका प्यारा घोड़ा बुकाफिलस मारा गया। सिकन्दर सिर के बल पृथ्वी पर आ पड़ा, पर उसके अनुचरों ने उसे बचा लिया। युद्ध दिवस के अवसान तक चलता रहा और पोरस के हाथियों द्वारा यूनानी सेना बुरी तरह से नष्ट हुई। सबसे अधिक भयंकर दृश्य वो हाथियो द्वारा सशस्त्र सैनिकों का सूण्ड मे पकड़ कर सिरों पर बैठे हुए महावतों के हाथों मे सौंपना था, जो तुरन्त उनका सिर काट लेते थे। युद्ध संशयात्मक रहा, कभी यूनानी सेना हाथियों का पीछा करती थी, कभी उनसे भयान्वित हो वह स्वयं भाग खड़ी होती थी। इसी प्रकार युद्ध चलता रहा, यहाँ तक कि समस्त दिन समाप्त हो गया। हाथी अपनी विशाल काया और बल के कारण बहुत लाभकारी सिद्ध हुए। बहुत से शत्रुओं को उन्होने अपने पैरो तले रौंद कर मार डाला। उनके कवचों तथा हड्डियों को चूर चूर कर दिया। शत्रु दल के अन्य बहुत से व्यक्तियो को भयानक रूप से मृत्यु के घाट उतारा। पहले उन्होंने उन्हें अपनी सूण्ड में लपेट कर ऊपर उठाया और फिर उन्हें बड़े जोरो के साथ पृथ्वी पर दे मारा और बहुत से अन्य लोगो का जीवन उन्होने एक ही क्षण मे अपने दाँतो से उनके शरीरो को छेद कर समाप्त कर दिया।

पोरस की अन्य सेनाओ के भीषण युद्ध को अलग छोड़ते हुए केवल हाथियो के विनाशकारी प्राचीन ग्रीक इतिहासकारो के उक्त वृत्तान्तो के विचार से ही यूनानी सेना की दी हुई हानि का उनका विवरण कितना आश्चर्यजनक है। एरियन, जो कि सिकन्दर के ऐतिहासिको मे बहुत ही गम्भीर है, लिखता है कि झेलम के युद्ध में यूनानी सेना के केवल ८० पैदल सिपाही और २३० घुड़सवार धराशायी हुए। आज कल की लड़ाइयो में भी सरकारी बयान इसी प्रकार निकला करते हैं। इस प्रकार के विवरणो से सिकन्दर के रोमांचकारी वीरत्व की झूठी सच्ची कहानियाँ बनी हैं और भ्रमवश इन्हीं को ऐतिहासिक तथ्य माना गया है। एक आधुनिक

योरोपीय इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है कि झेलम के युद्ध में सिकन्दर की सैन्य सम्बन्धी हानियो पर बड़ी सावधानी से आवरण डाला गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सिकन्दर सम्बन्धी पुराने योरोपीय वृत्तान्तो मे झेलम के युद्ध की सिकन्दर की केवल हानियों को ही नहीं छिपाया गया है, प्रत्युत युद्ध के अन्तिम निर्णय का भी ठीक ठीक उल्लेख नही किया गया। कहा गया है कि झेलम के युद्ध में पोरस की हार हुई, क्योकि जब उसके हाथियो पर आक्रमण हुआ तो वे घायल होकर अपनी सेना पर ही टूट पड़े और अपने ही सैनिको को अपने पैरों तले रौदते हुये अन्त मे वे भेड़ों के झुण्ड के समान रणस्थल से भाग उठे। यह बात मनगढ़न्त प्रतीत होती है। यदि इस बात को सच मान लें तो उसके अनुसार हाथियो की सेना युद्ध के लिये बिलकुल अनुपयुक्त सिद्ध हुई, क्योकि उनकी संहारकारी प्रवृत्तियां और उनके सहसा भाग उठने से उनके ही ओर वालो को हानियाँ उठानी पड़ीं। यदि ऐसा था तो सेल्यूकस तथा उसके अन्य समकालीन मेसेडोनियन और यवन सरदार, जो सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् एशिया में अपने राज्य-स्थापना के लिये आपस मे लड़े, इन हाथियो की सेना के लिये इतने लालायित न होते। इसका स्पष्ट प्रमाण मौजूद है कि हाथियो की सेना ने झेलम के युद्ध में सफलता पूर्वक युद्ध किया। यूनानी सेनानायको और विशेषकर सेल्यूकस पर इसका बहुत ही प्रभाव पड़ा था। सेल्यूकस को स्वयं हाथियो के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा था। जब वह सीरिया के राज्य का अधिकारी हुआ तो उसने युद्ध के हाथी प्राप्त करने के लिये पूर्व की ओर कितने ही समृद्ध प्रान्तो का बलिदान कर दिया और हाथी ही को उसने अपने वश का चिन्ह बनाया। अगर यह मान भी लिया जाय कि झेलम के युद्ध में एक बार हाथियो की सेना अस्तव्यस्त हो गयी थी तो उसके साथ में हमें यह भी बताया जाता है कि उनमें से

अनेक स्वयं पोरस के चारों ओर लाकर एकत्रित कर दिये गये थे और पोरस ने युद्ध के लिये उनका नेतृत्व ग्रहण किया, जिसके कारण शत्रु सेना बुरी तरह से नष्ट हुई, जैसा कि डायोडोरस ने लिखा है, "पोरस, जो सब से शक्तिशाली हाथी पर सवार था, इस घटना को देख कर अपने चालीस हाथियो को, जो अभी नियन्त्रण मे थे, अपने चारों ओर एकत्रित कर शत्रु पर टूट पड़ा और शत्रु सेना का बुरी तरह सहार किया।"

पोरस और सिकन्दर के इस युद्ध सम्बधी निम्न प्राचीन एथिओपिक पाठ मे सम्भवतः यह सत्य सुरक्षित है कि सिकन्दर पोरस को पराजित नहीं कर सका। "पोरस के विरुद्ध युद्ध मे सिकन्दर के अधिकांश घुड़सवार मारे गये। इस कारण उसकी सेना शोक से व्यथित हो कुत्तों के समान दीन स्वर में रोने और चिल्लाने लगी। सैनिको ने अपने हाथों से हथियारों को फेंक कर और सिकन्दर का त्याग कर शत्रु की ओर जाना चाहा। जब सिकन्दर को, जो स्वयं ही बड़ी विपत्ति में था, यह विदित हुआ तो वह युद्ध को रोकने की आज्ञा देकर पोरस के सामने इस प्रकार प्रलाप करने लगा, "ओ भारतीय राजा पोरस, मुझे क्षमा कर। मैं तेरे शौर्य और बल को पहिचान गया हूँ। अब विपत्ति नहीं सही जाती, मेरा हृदय पूर्ण व्यथित है। इस समय मैं अपने जीवन को अन्त करने की इच्छा करता हूँ, परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि ये समस्त लोग जो मेरे साथ हैं बरबाद हो जाये, क्योकि मैं ही वह व्यक्ति हूँ जो इन्हे यहाँ मौत के मुख में लाया हूँ। यह एक राजा के लिये किसी प्रकार भी उपयुक्त नहीं है कि वह अपने सैनिकों को मृत्यु के मुख में ढकेल दे।"

प्राचीन योरोपीय इतिहासकारो के अनुसार भी सिकन्दर ने झेलम के युद्ध के अन्तिम समय में पोरस से मित्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस विवरण और उक्त एथिओपिक पाठ में, कि सिकन्दर ने ही सुलह के लिये प्रयत्न किया, सामंजस्य स्थापित होता

है। हमें एरियन के कथनों से विदित होता है कि प्रथम सिकन्दर ने तक्षशिला नरेश को ही संधि का संदेशा लेकर भेजा। परंतु पोरस अपने इस पुराने शत्रु और देश द्रोही का अवश्य ही बध कर डालता यदि वह वहाँ से शीघ्र ही भाग कर अपने प्राण न बचाता। पोरस से मित्रता स्थापित करने के इस असफल उद्योग के पश्चात् सिकन्दर ने एरियन के अनुसार पोरस के पास संधि के संदेशे पर संदेशे भेजे। एरियन के इस महत्वपूर्ण प्रकरण से पोरस के पराजित होने की नहीं परतु इस तथ्य की अभिव्यक्ति होती है कि सिकन्दर उससे संधि करने के लिये बहुत ही व्यग्र था।

इस प्रकार हमे झेलम के युद्ध का निर्णय, जो कि योरोपीय एकपक्षीय पाठों में दिया गया है, ठीक प्रतीत नहीं होता। यह सम्भव हो सकता है कि पोरस ही उस युद्ध का यथार्थ विजेता रहा हो, और जैसा कि ऊपर जिक्र हो चुका है सिकन्दर ही सन्धि का प्रार्थी रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित युद्ध के पूर्ण रूपेण समाप्त होने से पूर्व ही सिकन्दर को सन्धि सम्बन्धी चर्चा आरम्भ कर देनी पड़ी थी, क्योंकि वह यह जान गया होगा कि यदि युद्ध जारी रहा, और वह उसमें हार गया, तो उसका सर्वनाश ही हो जायगा। प्राचीन क्षात्र परम्परा पर अटल रहने वाले पोरस ने प्रार्थी शत्रु पर आघात नहीं किया। इस प्रकार दोनो में सन्धि हो गयी। इस युद्ध के पश्चात् सिकन्दर पोरस को उसके राज्य के पास के पूर्वी प्रदेशो पर विजय प्राप्त करने में सहायता देने के लिये सहमत हो गया।*

इस युद्ध के पश्चात् पोरस ने सिकन्दर को अपनी रक्षा में ले लिया, इसका निरूपण इस तथ्य से हो जाता है कि व्यास के तट से लौटते समय जब तक वह पोरस के राज्य में रहा, वह सुरक्षित

---

* पोरस और सिकन्दर के बीच इस झेलम के युद्ध की घटनाएँ एक ऐतिहासिक नाटक 'पुरु और एलेक्ज़ेन्डर' (इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद) में चित्रित की गयी हैं।

था, पर जैसे ही वह उससे बाहर निकला उसे महा कठिन विरोध का सामना करना पड़ा। मल्लों के साथ युद्ध में स्वयं उसको अच्छी मार पड़ी और उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये गये होते। अपनी सेना को उत्साहित करते के लिये उसे एक से अधिक बार अपने जीवन को भी संकट मे डालना पड़ा। पोरस को पराजित करने मे वह असफल रहा, सम्भवत: इस समाचार ने पश्चिमोत्तर भारत मे उसके विरुद्ध विद्रोह को प्रोत्साहित कर दिया। झेलम के युद्ध के पश्चात् ही, जब कि सिकन्दर पंजाब की नदियो के अन्तराल मे युद्ध कर रहा था, अश्वको ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया और उसके निकेनौर नामक सूबेदार का बध कर दिया। यह विद्रोह कभी नहीं दबाया जा सका और सिकन्दर के व्यास के तट से सिन्ध और मकरान के मरुस्थल से हो सहसा भागने का, जहाँ उसकी अधिकांश सेना नष्ट हो गयी, कारण भी यही विद्रोह था।

ऐसा प्रतीत होता है कि सिकन्दर के भारतीय आक्रमण की बनायी हुई कहानियो मे सिकन्दर की उसकी झेलम के युद्ध सम्बन्धी पराजय पर आवरण डालने का प्रयत्न किया गया है। इसी कारण यह कल्पना भी की गयी है कि सिकन्दर पोरस की वीरता से प्रभावान्वित हुआ और उसे अपना मित्र बना कर उसका राज्य वापिस दे दिया। सिकन्दर अपने प्रतिद्वन्दियो के प्रति बहुत कठोर था। इसके लिये कोई भी बैक्ट्रीया के ईरानी सूबेदार बेसस के, जिसको दारयवुश की मृत्यु के बाद ईरानियो ने अपना सम्राट् बनाया, साथ उसके पाशविक व्यवहार की स्मृति करा सकता है। बेसस अपने देश की स्वतंत्रता के लिये अन्त तक बड़ी वीरता से लड़ा। जिस समय वह पकड़ कर सिकन्दर के सामने लाया गया, उसने उसको कोड़े लगाने की आज्ञा दी, और तत्पश्चात् उसके नाक कान कटवा कर मरवा दिया। अन्य ईरानी सूबेदारो के साथ भी, जिन्होने अपने देश के लिये युद्ध किया, ऐसा ही व्यवहार किया गया। इसी प्रकार कैलस्थनीज के साथ भी उसके व्यवहार

की स्मृति करायी जा सकती है। कैलस्थनीज उसके गुरु एरिसटॉटिल का भतीजा था। इसने सिकन्दर द्वारा ईरान के महान् सम्राटों के व्यवहारों के मूर्खतापूर्ण अनुकरण के प्रतिकूल प्रतिवाद किया था। इस पर कैलस्थनीज को बेड़ियों से जकड़ कर लाया गया और बाद मे उसे शिकंजे में कस कर मरवाया गया। सिकन्दर को अपने ही हाथ से क्लीटस के निर्दयता पूर्ण वध के पाप से मुक्त नहीं किया जा सकता। इस बेचारे क्लीटस का इतना ही दोष था कि इसने एक दिन सिकन्दर के पिता फिलिप्स की कीर्तियों का बखान कर दिया था। क्लीटस सिकन्दर की धाय का, जिसे वह माता के समान पूज्य मानता था, सहोदर भाई था, और इसने एक युद्ध में सिकन्दर की जान भी बचाई थी। अपने पिता के विश्वासपात्र सेना नायक पारमिनियन का बध सिकन्दर के चरित्र पर एक बड़ा कलंक है। रात्रि के आवरण में भारतीय सैनिकों का, जिन्हें मसागा से लौटने की आज्ञा मिल चुकी थी, सिकन्दर द्वारा किया गया क्रूरता पूर्ण रक्तपात भी उसकी कठोरता का एक उदाहरण है। उसकी समस्त तूफानी युद्ध यात्रा स्थान-स्थान पर सम्पन्न नगरों को नष्ट करने, और स्त्रियों, बच्चों, तथा जो कोई भी उसके सामने आया, उनके रक्तपात से पूर्ण थी। उदाहरणार्थ उसने सिन्ध की अपनी समस्त युद्ध-यात्रा में ऐसा ही किया। सिकन्दर का स्थान ससार के बड़े बड़े आततायियों और अत्याचारियों में होगा। उसका अल्प जीवन पाशविक रक्तपातों, अनुचित हत्याओं और नीचता-पूर्ण प्रतिशोधों से पूर्ण था। उसकी किसी भी उदारतापूर्ण कीर्ति से उसका जीवन उज्ज्वल नहीं हुआ जब तक कि हम पोरस के प्रति उसकी कल्पित सुहृदयता में विश्वास न करें।

हमें यह भी बताया जाता है कि पोरस के प्रति सिकन्दर की सहृदयता पोरस की स्वतंत्रता और उसके राज्य के लौटाने तक ही सीमित न थी, प्रत्युत् उसने पोरस के राज्य में उपहार रूप उसके पूर्व की ओर एक बड़ा प्रदेश भी सम्मिलित कर दिया। यह फिर

एक झूठी कल्पना ही प्रतीत होती है। इस नवीन प्रदेश का उपहार झेलम के युद्ध क्षेत्र में दिया गया, इसमें विश्वास करना मूर्खता होगी, क्योंकि उस समय तक उस पर विजय ही नही प्राप्त की गयी थी। झेलम के युद्ध के पश्चात् इस उपहार का प्रश्न उठ ही नहीं सकता, क्योंकि हमें यह ज्ञात है कि सिकन्दर और पोरस के सम्मिलित रूप से घोर सग्राम करने के पश्चात् ही यह प्रदेश जीता गया था। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि झेलम के युद्ध के बाद पोरस ने सिकन्दर को अपनी विजयो का साधन बनाया, जैसे कि आम्भी ने पोरस को पराजित करने के लिये उसे अपना साधन बनाना चाहा था। पोरस अपने उद्योग मे सफल रहा, और आम्भी के हाथ असफलता पडी।

झेलम के युद्ध के पश्चात् सिकन्दर पोरस के साथ पूर्व की ओर आगे बढ़ा। झेलम और रावी के बीच मे उसको कोई युद्ध करना नहीं पड़ा। चिनाब और रावी दोनो ही नदियाँ उसने बिना किसी विरोध के पार करलीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पोरस का प्रभाव और सम्भवतः उसके राज्य का विस्तार रावी तक था। परन्तु रावी पार करने पर उसके और व्यास के बीच में फिर उसे क्षत्रिय जातियो से भीषण युद्ध करना पड़ा। जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं, यहाँ पोरस ने सिकन्दर के साथ मिल कर युद्ध किया और रावी तथा व्यास के मध्यवर्ती प्रदेश को पोरस ने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। व्यास के तट पर पहुँच कर सहसा सिकन्दर की सेना ने अपने शस्त्र छोड़ दिये और आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। सिकन्दर ने उन्हें आगे बढ़ाने के लिये साम दाम नीति से काम लिया, परन्तु सब व्यर्थ हुए और अन्त में उसे विवश हो वापिस लौटने की आज्ञा देनी पड़ी।

इसका क्या कारण था कि सिकन्दर लौटते समय अपने थकित और स्वदेश लौटने के लिये व्यग्र सैनिकों को सिन्ध और मकरान के मार्ग से ले गया? उसने पश्चिमोत्तर वाले मार्ग को, जिससे वह

आया था, और जो उसके द्वारा विजित प्रदेश से होकर जाता था, क्यो नहीं ग्रहण किया ? वह जानता था कि पोरस के राज्य (जिसका विस्तार रावी और चिनाव के संगम तक था) की सीमा को छोड़ते ही उसे फिर भीषण युद्ध करना पड़ेगा। योरोपीय इतिहासकार हमे यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि नवीन विजय की आकांक्षा से प्रेरित हो सिकन्दर ने यह दुर्गम और संकटापन्न मार्ग ग्रहण किया। जो सेना व्यास के तट पर विद्रोह कर लौटने में सफल हुई, क्या वह अपने द्वारा विजित देश से होकर जाने के लिये सिकन्दर पर दबाव नहीं डाल सकती ? जैसा हम पीछे बता आये हैं वास्तविक बात यह थी कि पश्चिमोत्तर से होकर जाने वाला ईरान का मार्ग सिकन्दर तथा उसकी सेना के लिये बिलकुल बन्द हो गया था। इस प्रकार वे सिंध और मकरान के मार्ग से जाने के लिये विवश हुए। इस बात को पूर्णरूपेण समझने के लिये हमें हिन्दूकुश और सिंध नद के मध्यवर्ती प्रदेश पर, जहाँ सिकन्दर के भीषण अत्याचारो ने धधकते हुए घावों को छोड़ा था, दृष्टि पात करना चाहिये।

जिस समय सिकन्दर अपने दल सहित रावी के निकट पडाव डाले पडा था अश्वको ने सिन्ध नद के पश्चिम मे उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। उन्होने उसके क्षत्रप निकेनौर का वध कर डाला। शशिगुप्त, जैसा कि वह बहुत बड़ा अवसरोपयोगी था, विद्रोहियों का नेता बन बैठा। इस विद्रोह का आयोजन बहुत बडा रहा होगा, क्योंकि अश्वकों को संगठित होने के लिये पर्याप्त समय मिल गया था। इस प्रकार सिकन्दर के पीठ पीछे अश्वको को उसके सैन्य-बल के बराबर ही सैन्य-शक्ति सगठित करने का यह प्रथम ही अवसर मिला। पोरस के विरुद्ध झेलम के तट पर युद्ध कर सिकन्दर की सेना नितान्त जर्जरित हो गयी थी। इस दशा में यह किस प्रकार झेलम के युद्ध के समान एक और युद्ध का संकट मोल लेती। इतना ही नहीं, इस युद्ध में तो यवनों को एक बहुत

विशाल सेना से लोहा लेना पड़ता, जिसमे असफल होने पर उनका पूर्ण विनाश अवश्य ही होता। इन्हीं सब कारणो से सिकन्दर की सेना व्यास के तट पर भय से विचलित हो उठी और उन्होंने अति शीघ्रता से सिन्ध और मकरान के मार्ग से लौट जाने का प्रयत्न किया।

लौटते समय यूनानी सेना की सैन्य रीति नीति का नितान्त लोप हो गया था। मार्ग मे मल्लियों से युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व यूनानी सेना एक बार फिर विद्रोह करने पर उतारू हो गयी थी। उन्हें संगठित रखने के लिये सिकन्दर को कई बार अपने जीवन तक को सकट मे डालना पड़ा। मल्लियो के विरुद्ध एक युद्ध में सिकन्दर का शरीर घावो से छिद गया था। यह आश्चर्य की बात [illegible] ५९ उन घावो और चोटो से कैसे जीवित रह सका। [illegible] ने इस घटना का निम्नलिखित विवरण दिया है, 'मल्ली (मालव) भारत की सब से अधिक युद्ध-कुशल जाति कही जाती थी। उनसे युद्ध करते हुए सिकन्दर ऐसी स्थिति मे पहुँच गया था कि उनके द्वारा उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले जाते। उसने अपने को मल्लियों की दीवार के नीचे से खदेड़ भगाया और वह पहला ही व्यक्ति था जो दीवार पर चढ़ा। ज्यो ही वह ऊपर पहुँचा कि डंडों की सीढ़ी टूट गयी और वह वहीं खड़ा रह गया, नीचे से मल्लियों ने उस पर तथा उसके साथियो पर, जो वहाँ उपस्थित थे, तीरो की वर्षा कर दी। यह देख कर सिकन्दर नीचे शत्रुओ के बीच में कूद पड़ा। उन लोगो ने आगे बढ़ कर उस पर आक्रमण किया और उसके कवच को छेद कर तलवार तथा बर्छियो से उसे घायल कर दिया। एक मल्ली ने, जो कुछ दूर पर खड़ा था, इतने जोर से खींच कर तीर चलाया कि वह वक्षत्राण को छेदता हुआ सिकन्दर के सीने की पसली मे जा घुसा। वह बाण इतने बल पूर्वक चलाया गया था कि उसके जोर से सिकन्दर पीछे को पिछड़ गया और घुटनों के बल आ गिरा। उस समय मल्ली लोग उसका सिर काटने के लिये तलवार लेकर दौड़े, परन्तु सिकन्दर के दो साथी उसके सामने

आ खड़े हुए और उन्होने उसकी रक्षा की। उनमें से एक बुरी तरह घायल हुआ और दूसरा मारा गया। सिकन्दर की गर्दन पर एक मोटे डंडे का बहुत ही तुला हुआ हाथ लगा, जो अन्तिम प्रहार था। तत्पश्चात् उसके सैनिक दीवार तोड़कर वहाँ घुस आये और उसे मूर्छित दशा में अपने शिविर पर ले गये। इस घटना के कारण क्रोधान्वित यवन सैनिक नगर-निवासियों पर टूट पड़े और स्त्रियो तथा बच्चों सहित सबका बध कर डाला।"

यूनानी सेना ने समस्त सिंध में जैसा पाशविक अत्याचार किया वैसा मानव इतिहास में मिलना कठिन है। प्रत्येक स्थान पर सिकन्दर के प्रति कटु भावनाएँ जागृत हो गयी थीं। उसको अपनी जान बचा कर भारत से लौट जाने के लिये रक्तपात आवश्यक हो गया था। सम्भवतः सिकन्दर का विचार भारत से समुद्री रास्ते से निकल भागने का था, परन्तु उस मार्ग से जाना असम्भव था। वह अगस्त मास में हिन्द महासागर मे पहुँचा और इन दिनो वहाँ प्रतिकूल हवाएँ चलने लगती है। यह देखकर सिकन्दर ने अपने सेनानायक नियारकस की अध्यक्षता में बेड़ा छोड़ दिया और स्वयं अधिकांश सेना सहित मकरान की मरुभूमि से भाग निकला।

बिलोचिस्तान की सब जातियाँ भी सिकन्दर के विरुद्ध खड़ी हो गयीं। बड़ी कठिनता से उसने कुछ को वश मे किया और वहाँ से कुछ रसद प्राप्त की। परन्तु जैसे ही वह आगे रेगिस्तान की ओर बढ़ा कि उन्होने वहाँ नियुक्त किये गये उसके क्षत्रप एपेलोफेनिस का बध कर डाला। इस प्रकार वहाँ से रसद पाने की सम्भावना भी जाती रही। प्राचीन योरोपिय इतिहासकार स्ट्रेबो ने मकरान-मरुभूमि में सिकन्दर की इस यात्रा का निम्न विवरण दिया है—

"सिकन्दर को लौटते समय अपनी समस्त यात्रा में बड़ी बड़ी विपत्तियाँ सहन करनी पड़ीं। उसका मार्ग संकटपूर्ण और वीरान प्रदेश से होकर था। रसद के लिये भी उसे बहुत परेशान होना पड़ा। वह दूर दूर से लानी पड़ती थी। वह भी कभी कभी मिलती

और इतने थोड़े परिमाण में कि सेना को बहुत ही ज़्यादा क्षुधा से पीड़ित होना पड़ा। बोझ लादने वाले जानवर भी दम तोड़ने लगे। उनकी सख्या मे कमी होने के कारण उन पर लादी हुई वस्तुएँ जहाँ-तहाँ मार्ग और पड़ावों मे छोड़ दी जाती थीं। सेना को अपनी क्षुधा-पीड़ा शान्त करने के लिये खजूरो और खजूर के वृक्षो के गूदे का ही सहारा था।

"रसद की न्यूनता के परिणाम स्वरूप पीड़ा के अतिरिक्त, सूर्य का प्रचण्ड आतप, बालू की गहराई और उसका ताप भी असह्य था। कही कही तो बालू की ऊँची सपाट मुंडेरे सी थीं जिनको पार करना कठिन हो जाता था। जलाशयो के दूर होने के कारण सेना को लम्बी लम्बी यात्राएँ करनी पड़ती थीं। ये यात्राएँ बहुधा रात्रि मे ही की जाती थी। शिविर जलाशयों से दूर रखे जाते थे, जिससे सैनिक बहुत प्यासे होने के कारण बहुत अधिक पानी न पी जायें। इतने पर भी बहुत से सैनिक शरीरत्राण पहने ही पहने पानी में कूद पड़ते थे। वहाँ वे ख़ूब पानी पीते और अन्त मे पानी के नीचे बैठ कर मर जाते। जब उनका शरीर सड़ उठता तो कुण्ड का उथला पानी ख़राब हो जाता। इस प्रकार अन्य सैनिक पानी पीने से वंचित रह जाते और प्यास से पीड़ित हो सड़को पर लेट कर अपने को प्रचण्ड मार्तण्ड के अर्पण कर देते थे। उनके हाथ पैर अकड़ जाते और वे भयानक अन्त गति को प्राप्त होते। कुछ थकान और नींद के कारण सड़क की एक ओर सोने चल देते थे, और इस प्रकार पीछे रह कर मार्ग में भटक जाते और भूख तथा प्रचण्ड गर्मी के कारण समाप्त हो जाते। इतने पर भी उनकी विपत्ति का अन्त न हुआ। इसके पश्चात् ही एक रात्रि को एक बड़ा जल प्रवाह उनके ऊपर बह आया। उसमें बहुत सी जानें गईं और बहुत सा सामान भी नष्ट हो गया। उसमें सिकन्दर का बहुत सा इधर-उधर से लूटा हुआ शाही सामान भी बह गया।"

सिकन्दर की अधिकांश सेना इस मरुभूमि में काल कवलित

हुई। नियारकस की अध्यक्षता में जो नावों का बेड़ा छोड़ा गया था उसकी भी यही दुर्दशा हुई। देशनिवासियो के विरोध के कारण प्रतिकूल हवा होने पर भी उन्हे रवाना होना पड़ा। हगोल तथा अन्य स्थानो पर उन्होने रसद और पानी लेने के लिये लंगर डालना चाहा परन्तु बहुत से व्यक्तियो की जान झौंक कर भी वे तट पर न उतर सके। योरोपीय ऐतिहासिकों ने इस जलयात्रा को खूब बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है। कैसी अविश्वसनीय बात है कि जो नावें पंजाब की नदियों में ही डूबने लगी थीं वे हिन्द महासागर मे विपरीत वायु के होने पर भी पार हो गयीं। परन्तु सिकन्दर और नियारकस के मिलने का निम्नलिखित विवरण अपनी कहानी स्वयं ही बता देगा। जैसा कि एरियन ने लिखा है—"धूप के कारण वह काला पड़ गया था। उसे कोई नहीं पहिचान सका। यहाँ तक कि उसकी खोज में भेजे गये दूत को स्वय उसने बताया कि 'नियारकस मैं हूँ।' वह ऐसी फटी दशा में सिकन्दर के सम्मुख उपस्थित हुआ कि वह भी अपने सेनानायक को नहीं पहचान सका।"

सिकन्दर का भारत को विजय करने का प्रयास उसकी बहुत ही बड़ी ग़लती थी। उसने उसकी अन्य विजयों पर भी पानी फेर दिया। वह भारत से लौटने के पश्चात् शीघ्र ही निराशा, शिथिलता और असयम से जर्जरित हो इस ससार से विदा हो गया। प्लूटार्क ने निम्नलिखित शब्दों में भारतीय यात्रा पर अपने भाग्य को कोसते हुए सिकन्दर से उपयुक्त ही कहलवाया है—

"भारतवर्ष में मैं सर्वत्र भारतवासियो के आक्रमण और क्रोध का भाजन बना। उन्होंने मेरे कन्धे को घायल किया। गान्धारियों ने मेरे पैर को निशाना बनाया। मल्लियों से युद्ध करते हुए एक तीर की नोक से मेरा वक्षस्थल छिद गया और गर्दन पर भी एक गदा का तगड़ा हाथ पड़ा।"

प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों के ही कथनों से हमने ऊपर यह सिद्ध किया है कि सिकन्दर की सेना भारत से खदेड़ कर बाहर

निकाल दी गयी। भागते समय उसकी सेना अधिकतर नष्ट हो गयी और बड़ी कठिनता से वह स्वयं भी अपनी जान बचा सका।

सिकन्दर के भारतीय आक्रमण को ठीक ठीक समझने के लिए निम्न प्रश्न का उत्तर बडा आवश्यक है। प्रथम तो पश्चिमोत्तर भारत मे पुनः सारे दक्षिण पजाब और सिन्ध में जो सब लोग दृढ़ता पूर्वक सिकन्दर के विरुद्ध खड़े हो गये थे, तो क्या उनका यह विरोध पूर्णरूपेण संगठित था ? यह ठीक ही कहा जाता है कि पंजाब के ब्राह्मणों में ही सिकन्दर के खिलाफ विरोध खड़ा हुआ, जिसने भारत से यवन राज्य का शीघ्र ही नामोनिशान तक मिटा दिया। सिन्ध में भी ब्राह्मण ही उसके सबसे कट्टर विरोधी थे। उसने भी, जब उसको अवसर मिला, तो उनके नष्ट करने में कमी न उठा रखी। तब सिकन्दर के विरुद्ध इस स्वतंत्रता के युद्ध के नेता कौन थे ?

ऐतिहासिक परिषदों और पत्रिकाओं के लिये लिखे गये कुछ लेखों* मे हमने निम्न बातें, जिनका जिक्र इस नाटक में आया है, सिद्ध की हैं।

(१) चन्द्रगुप्त मौर्य नन्द वंशीय नहीं था और न मगध ही उसका मूल जन्म स्थान था। नन्द-मुरा की कहानी तो अठारहवीं शताब्दि मे गढ़ी गयी है। वास्तव में वह पश्चिमोत्तर भारत का निवासी था। उसका जन्म स्थान सिंधु और कुनार नदियों के मध्य कोहमोर नाम का प्रदेश था, जिसके ही कारण सम्भवतः उसके वंश का नाम मौर्य पड़ा। चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त एक ही व्यक्ति थे। शशिगुप्त उसका जन्म नाम था और सम्भवतः भारत के सम्राट् पद ग्रहण करने पर उसने चन्द्रगुप्त नाम धारण किया।

---

* इन लेखों का सविस्तार हिन्दी अनुवाद हमारी निम्न पुस्तक में मिलेगा। "चन्द्रगुप्त मौर्य और एलेक्ज़ेन्डर की भारत में पराजय" (राव पबलिशिंग हाउस, बुलन्दशहर (यू० पी०)

(२) चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त कौटिल्य भी पश्चिमोत्तर भारत में विख्यात तक्षशिला देश का निवासी था। शुरू से ही चन्द्रगुप्त और चाणक्य में घनिष्ठ सम्बन्ध था।

(३) चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त में ऐक्यता स्थापित होने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चन्द्रगुप्त ने पहिले तो सिकन्दर से मेल कर लिया, पुनः अवसर पाने पर चन्द्रगुप्त पश्चिमोत्तर भारत में सिकन्दर के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, जिसके कारण उसको अपनी जान बचाकर सिंध और मकरान के मरुस्थल से होकर भागना पड़ा। सिंध और मकरान में भी चाणक्य ने सिकन्दर के विरुद्ध वहाँ के लोगों, विशेषकर ब्राह्मणों, को उसका दिया था और स्वयं चन्द्रगुप्त ने यहाँ आकर भी सिकन्दर का विरोध किया था।

(४) ग्रीक इतिहासकारों का पोरस और मुद्राराक्षस नाटक का पर्वतक एक ही व्यक्ति थे। सिकन्दर को भारत से भगाने के बाद चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने पोरस अथवा पर्वतक से मिलकर नन्दों के मगध राज पर विजय प्राप्त की थी। इस विजय के साथ ही पर्वतक का बध किया गया था, जिसके साथ साथ चन्द्रगुप्त का समस्त उत्तरीय भारत पर साम्राज्य फैल गया था।

(५) दक्षिण भारत पर भी स्वयं चन्द्रगुप्त ने ही विजय प्राप्त की थी।

इस प्रकार जब सिकन्दर के सेना-नायक सेल्यूकस ने सीरिया, बेबीलोन आदि पर अपना साम्राज्य स्थापित करने पर भारत पर चढ़ाई करने का प्रयत्न किया, तो लगभग समस्त भारत मौर्य साम्राज्य की छत्रछाया में आ चुका था। चन्द्रगुप्त ने बड़ी सुगमता से सेल्यूकस को सिन्धु के उस ओर ही हरा दिया और मध्य एशिया तथा पूर्वी ईरान का, एरियाना, अराकोशिया, गडरोशिया आदि बहुत-सा इलाका उससे छीन कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। बाद में चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस में सन्धि हो गयी और सम्भवतः सेल्यूकस ने अपनी कन्या का विवाह भी चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया।

भारत के इस समय के इतिहास की उक्त रचना के आलोक में दोनों चाणक्य और चन्द्रगुप्त हमारे सामने एक नवीन रूप में प्रकट होते हैं। पश्चिमोत्तर भारत का निवासी होने के कारण चाणक्य ने सिकन्दर के आक्रमण के समय विभक्त देश पर सम्भावित सकटों का अनुभव किया। उसने अवश्य ही यह देखा कि उपयुक्त प्रकार से सुसगठित तथा निकटरूप से एक राष्ट्र में सम्बद्ध भारत ही सिकन्दर के समान विदेशी आक्रमण का सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सकता था। उस समय जो उसने एक शक्तिशाली, सुसंगठित तथा अखण्ड भारतीय साम्राज्य के स्थापित करने की धारणा की वह थोड़े समय के अन्दर ही पूर्ण हुई।

यदि मुद्राराक्षस नाटक मे उपयुक्त ऐतिहासिक परम्परा का प्रतिपादन हुआ है तो नन्द के लोकप्रिय मन्त्री राक्षस को चन्द्रगुप्त की ओर मिलाना उसकी नीति का अतिकुशल कार्य था। इससे नवीन मौर्य साम्राज्य के प्रति पूर्व भारत में जो कुछ भी विरोध रह गया था वह पूर्णरूप से दब गया। मगध मे चन्द्रगुप्त की स्थिति सुरक्षित हो गयी। जब चाणक्य ने यह देख लिया की महान् चन्द्रगुप्त सम्मिलित भारत के सिंहासन पर दृढतापूर्वक आसीन हो गया है, तब ही उसने मन्त्री पद त्याग कर सम्भवतः अपनी प्रखर बुद्धि को और भी महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओ के हल करने में लगाया, जो उसकी प्रतिभा की सहायता से चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य के सम्मुख उपस्थित थीं। राजनीति पर उसका महान् और अमिट ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' सम्भवत चन्द्रगुप्त की मगध पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् शीघ्र ही लिखा गया था।

इस प्रकार चाणक्य भारत के दृढ़, निस्पृह और निस्वार्थ महान् व्यक्तियो में से एक था। उसके लिए यह कहना कि 'यह चन्द्रगुप्त और नन्दो के कौटुम्बिक झगड़े में लिप्त था बहुत ही खेदपूर्ण है। यदि उसके द्वारा इतने रक्त बहाने का कारण केवल नन्द राजा द्वारा, या अन्य कथाओ के अनुसार नन्द की सेविका द्वारा उसका अपमान माना

जाय तो हम उसे अवश्य ही बहुत ही नीच और प्रतिकारी व्यक्ति के रूप में देखते हैं। परन्तु चाणक्य द्वारा नन्दों के विनाश के कारण और ही मालूम होते हैं। मुद्राराक्षस से यह उपयुक्त ही ज्ञात होता है कि चाणक्य ने नन्दों का उन्मूलन इस कारण किया है कि वह राजोचित कर्तव्यों से विमुख थे। पौराणिक परम्परा में भी नन्द राजाओं के प्रति घृणित भावों की अभिव्यक्ति हुई है। ग्रीक ऐतिहासिकों ने भी सिकन्दर के आक्रमण के समय के मगध शासक की अत्यन्त लोक-अप्रियता का उल्लेख किया है। उनके अनुसार वह आचरणहीन एक नाई का पुत्र था। उसने मगध का सिंहासन अपने पूर्वाधिकारी का वध कर हथिया लिया था और पटरानी को भी भ्रष्ट किया था। श्री० जायसवाल ने सम्भवतः यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि "सिकन्दर के आक्रमण का मुकाबला करते समय गान्धार प्रजातन्त्रों ने मगध की सहायता माँगी होगी, परन्तु वहाँ से कोई सहायता न मिली।" इस प्रकार चाणक्य ने यह अनुभव किया कि भारत की रक्षा और उसमें एक सम्मिलित साम्राज्य स्थापित होने के लिए अन्य बहुत से राजाओ और प्रजातन्त्रों की तरह नन्द राज्य का अन्त भी आवश्यक था।

यह चाणक्य की ही शासन प्रबन्धकारिणी प्रतिभा थी, जिसने लगभग समस्त भारत और उसके परे के पश्चिमी प्रदेशों पर शक्तिशाली और अत्यन्त सुसंगठित मौर्य-साम्राज्य स्थापित किया। विंसेन्ट स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि "अकबर के साम्राज्य की शासन व्यवस्था उस उत्कृष्टता को नहीं पहुँची जिसको कि अट्ठारह या उन्नीस शताब्दियो से पूर्व मौर्य साम्राज्य की पहुँच गयी थी।" यदि हम इस बात को स्मरण रखें कि चाणक्य की सहायता से ही भारत में उस राजनैतिक सूत्र का सूत्रपात हुआ, जिसके कारण अशोक के समय में प्रथमवार भारतवर्ष ससार को सफलतापूर्वक शान्ति, प्रेम और भ्रातृभाव का सन्देश सुनाने के योग्य बना, तो हम उपयुक्त रूप स चाणक्य को केवल भारत के इतिहास का ही नहीं प्रत्युत् संसार के इतिहास का एक बड़े महत्त्वपूर्ण युग का प्रवर्तक कह सकते हैं।

जब हम चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त कौटिल्य की विद्वता, उसकी प्रतिभाशाली बुद्धि, उसकी निस्वार्थता, विशाल मौर्य साम्राज्य को स्थापित कर समस्त भारत को एक महान् राष्ट्र बनाने में उसकी चन्द्रगुप्त को पूर्ण सहायता और अर्थशास्त्र जैसे अमूल्य ग्रंथ की उसकी रचना, इन सब बातों को साथ साथ ध्यान में रखते हैं, तो सुगमतापूर्वक हमारी समझ में आ जाता है कि क्यों सैकड़ों वर्षों बाद कामन्दक ने विष्णुगुप्त कौटिल्य को प्राचीन बड़े बड़े ऋषियो की श्रेणी में रखा, उसके तेज को अग्नि के तेज के समान बताया और उसकी रचनात्मक बुद्धि की ब्रह्मा की बुद्धि से तुलना की—

वंशे विशालवंशानामृषीणामिव भूयसाम्
अप्रतिग्राहकाणां यो बभूव भुवि विश्रुतः ॥
जातवेदाइवार्चिष्मान् वेदान् वेदविदांवरः ।
योऽधीतवान् सुचतुरश्चतुरोप्येकवेदवत् ॥
नीतिशास्त्रमृत धीमनर्थशास्त्रमहोदधेः ।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे ॥ (नीतिसार)

ससार के इतिहास मे चन्द्रगुप्त का क्या स्थान है, इस विषय पर तो अभी तक उपयुक्त ध्यान ही नहीं दिया गया । एकपक्षीय हो योरोपीय विद्वानों ने तो सिकन्दर को मनमाना ऊपर चढ़ा दिया है । उसको ससार के विजेता आदि पदवियो से आभूषित किया है । यह कोई आश्चर्य की बात नही है, हर एक जाति अपने अपने छोटे छोटे विजेताओ को भी ऐसी ही पदवी देती है । यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो सिकन्दर एक उन्मादित के समान विशाल ईरान के साम्राज्य के भीतर ही केवल इधर उधर मारा मारी करता हुआ घूमता रहा । यवनो का ईरान साम्राज्य से घरेलू झगड़ा था । सिकन्दर के पूर्व की शताब्दियो में ईरान के साम्राटो ने कितने ही यवन प्रान्तो को अपने अधीन कर लिया था और उनसे कर वसूल करते थे । ईरान के साम्राज्य की शक्ति अब हीन हो रही थी । इस अवनत दशा में भी एक समय के कुरु और दारयवुश के पूरे ईरान के साम्राज्य पर

भी सिकन्दर विजय नही प्राप्त कर सका। उस साम्राज्य के बाहर भारत में आते ही उसकी क्या दशा हुई इसका हम ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। ईरान के साम्राज्य के जिन भागो पर उसने विजय भी प्राप्त की उन तक को वह थोडे समय के लिये भी अपने हाथ मे न रख सका। क्रूर बच्चे के हाथ में मिट्टी के एक खिलौने के सदृश उसके हाथ में आते ही ईरान का विशाल साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। वास्तव में सिकन्दर की ससार के प्रमुख साम्राज्य निर्माताओ और शासको में गणना हो ही नहीं सकती। वह एक बहादुर सिपाही अवश्य था, पर उसकी क्रूरता के कारण उसका स्थान तो ससार के बड़े बडे आततायियों और अत्याचारियो में है। उसकी क्रूरता की बहुत सी बातें हम पीछे दे ही आये हैं।

यहाँ हम उसकी एक अन्तिम क्रूरता का और उदाहरण देते हैं। भारत से लौटने पर जब हेफ़ेसियन नामक उसके सेनापति और मित्र की मृत्यु हो गयी तो शोक और क्रोधाग्नि से प्रेरित हो उसने सारे घोड़ो और खच्चरों के बाल कटवा डाले और फिर काकेशस के ऊपर स्वय चढ़ाई कर हेफेसियन की यादगार में वहाँ के सबही स्त्री पुरुषो को जो बिलकुल निर्दोष थे गिनगिन कर मरवा डाला। इसके थोड़े ही दिनों पश्चात् अति मदिरापान और विषयो में लिप्त वह स्वय भी संसार से चल बसा।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उस समय का सबसे महान् व्यक्ति तो चन्द्रगुप्त था। थोडी बहुत ऐतिहासिक सामग्री जो उसके विषय में हमको मिलती है उससे हमको मालूम होता है कि वह एक विलक्षण पुरुष था। इस ऐतिहासिक तथ्य में सन्देह ही नही कि उसको पुश्तैनी तो कोई बडा राज्य मिला ही नही था, परन्तु अपने ही बाहुबल से उसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और लगभग चौबीस वर्ष उस पर अकंटक शासन भी किया। अपनी युवावस्था में ही उसने इस विशाल साम्राज्य का आधिपत्य ग्रहण किया। इस बात का पता हमको चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय

और भारतीय दोनो वृत्तान्तों से मिलता है। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारो से हमको पता चलता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त एक युवक ही था, पर जैसा कि हम पीछे कह आये हैं सिकन्दर के भारत से बाहर जाने के पहिले ही स्वय सिकन्दर के विरुद्ध भी उसने यवन सेना को पददलित करना शुरू कर दिया था और भारत से सिकन्दर के बाहर जाते तक वह पश्चिमोत्तर भारत और अफग़ानिस्तान आदि का अधीश्वर बन गया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् उसने पूर्व मे मगध तक अपना साम्राज्य बढ़ा लिया। मगध के जीतने के समय भी वह युवावस्था ही मे था। मगध के जीतने के कुछ समय पश्चात् उसने भारत के अन्य भागो पर भी विजय प्राप्त की।

चन्द्रगुप्त बहुत वीर और साहसी था। प्राचीन योरोपीय इतिहासकार जस्टिन ने लिखा है कि अपने बड़े हाथी की पीठ पर बैठ कर चन्द्रगुप्त सदैव अपनी सेना के आगे युद्ध करता था। अपनी इस वीरता और साहस के कारण और इतनी युवावस्था में प्रथम तो सिकन्दर के विरुद्ध पुनः सेल्यूकस के ऊपर विजय प्राप्त करने के कारण समस्त पश्चिम भारत और पंजाब की वीर जातियों पर और साथ साथ अपने साम्राज्य के अन्तर्गत ईरानी, यवन और मध्य एशिया की अन्य वीर जातियो पर उसने अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया। इससे हमको यह भी विदित हो जाता है कि किस प्रकार इस भारत के महान् सम्राट् के "अब से दो हजार वर्ष से भी पहले पश्चिम की ओर भारत की वह असली और वैज्ञानिक सीमा हाथ पडी जिसकी ओर आज तक अंग्रेजी शासन सदैव हसरत भरी निगाहो से देखता है और जिस पर सोलहवी और सत्रहवीं शताब्दियो के मुग़ल सम्राटो ने भी पूरी तौर पर काबू न पाया था।"❋

चन्द्रगुप्त न केवल एक बहुत बड़ा विजेता ही था परन्तु वह एक बहुत बडा शासक भी था। साम्राज्य की शक्ति बढ़ाने और जन

❋Vincent Smith: Early History of India. पृ० १२०

साधारण की सुविधा के लिये उसने कितने ही बड़े बड़े काम किये। जैसा हमको प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से पता चलता है उसने पश्चिमोत्तर भारत से लेकर पाटलिपुत्र तक वृक्षों से ढंकी और थोड़ी थोडी दूर पर कुएँ और ठहरने के स्थान आदि के साथ सड़क बनवाई। इस प्रकार की और भी कितनी ही सड़के उसने बनवाईं। आबपाशी के लिये सौराष्ट्र में सुदर्शन नाम की झील के समान, जिसका पता रुद्रदामन के ईसवीं संवत् की प्रारम्भिक शताब्दि के खुदवाये हुए गिरनार के लेख से मिलता है, उसने कितनी ही झीलें और नहरें भी बनवाईं। उसके पाटलिपुत्र मे बनवाये हुए राजमहलो की शोभा ईरान के सम्राटों के राजमहलों, जो उस समय के संसार मे सबसे सुन्दर गिने जाते थे, से भी कहीं बढ़चढ़ कर थी। चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय और भारतीय वृत्तान्तो के आधार पर हमको मालूम होता है कि सारे देश में नापने और तौलने के ठीक ठीक पैमाने बनवाने, सोने और चाँदी के सिक्के बनवाने, व्यापार के लिये सड़कें और जगह जगह पर नगर और बाजार बनवाने, देश के अन्दर और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाने, स्थान स्थान पर आबपाशी के लिये तालाब और नहरें आदि खुदवाने, खानों और जगलो की पैदावार को ठीक ठीक निकलवाने, पशुओ की नसलो को अच्छा करने, मनुष्य और पशुओ के लिये चिकित्सालय खुलवाने, दुष्काल-निवारण का ठीक ठीक प्रबन्ध करने, अनाथ बच्चो, स्त्रियो और गरीब रोग-ग्रस्त मनुष्यो की मदद करने, स्थान स्थान पर न्यायालय बनवाने, समाज और राष्ट्र के लिये लाभकारी विद्याओ को बढ़ाने और उनको फैलाने आदि का काम चन्द्रगुप्त के शासन ने अपने हाथ मे ले रखा था।

चन्द्रगुप्त के शासन की जब हम इन सब बातो को ध्यान में रखते है तो हमें आश्चर्य नहीं होता कि यवन दूत मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त के समय के भारत में राज्य सुव्यवस्था, न्याय और जन साधारण की खुशहाली की तथा चोरी आदि जुर्मों के उस समय अभाव की

इतनी प्रशंसा क्यों की थी। चन्द्रगुप्त के शासन में क्रूरता न थी, सब पर ठीक न्याय होता था और जन साधारण की उन्नति और खुशहाली ही सम्राट् और उसके शासन का मुख्य लक्ष्य था।

स्वयं सम्राट् का शासन सम्बन्धी परिश्रम ही उस समय के भारतीय राष्ट्र-शक्ति और उसके सुसंगठन की बुनियाद थी। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से हमको पता चलता है कि शासन सम्बन्धी कामों में चन्द्रगुप्त कितना परिश्रम करता था। मेगस्थनीज़ के कथनों के आधार पर स्ट्रेबो ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त दिन मे नही सोता था। वह न केवल युद्ध के समय ही राजमहल से बाहर निकलता था, परन्तु प्रतिदिन वह न्यायालय जाया करता था, जहाँ निरन्तर कितने ही घंटे बैठ कर वह काम करता था। जन साधारण भी स्वयं उसके सामने अपनी असुविधायें पेश करते थे। किसी को भी उसके पास तक पहुँचने की रोक-टोक न थी। अर्थशास्त्र में दी हुई सम्राट् की निम्न दिनचर्या से भी यही पता चलता है कि किस प्रकार वह दिनभर शासन सम्बन्धी बातों में लगा रहता था। वह बहुत प्रातःकाल उठता था और प्रथम राजमहल की बातों की देख-रेख कर वह न्यायालय में प्रवेश करता था, जहाँ जन साधारण उससे मिल कर अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति की बात उसको बताते थे। किसी को भी उससे मिलने के लिए बहुत देर इन्तज़ार न करना पड़ता था। इसके बाद उसके स्नान, वन्दना और भोजन आदि का समय था। दोपहर को वह राज मन्त्रियों से शासन सम्बन्धी आवश्यक बातों पर परामर्श करता था। फिर दो घंटे खेल आदि में व्यतीत होते थे। तीसरे पहर वह सेना की देख रेख करता था और सायंकाल को बाहर के आये राजाओं व राजदूतों से मिलता था।

चन्द्रगुप्त एक विशाल साम्राज्य का युवक अधिपति होते हुए भी दृढ निश्चय के साथ और बिना भूल किये शासन का विधान करता था, यह बात बड़ी सुन्दरता के साथ मुद्राराक्षस के निम्न कथन में बतायी गयी है—

सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता।
चिरधुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यास्य गुरुणा॥
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो।
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न न दुःख वहित च ॥३॥ अंक ३

अन्यथा भी मुद्राराक्षस के अनुसार चन्द्रगुप्त मे एक महान् सम्राट् के सभी गुण थे। जैसा कि उक्त नाटक के निम्न कथन से मालूम होता है, चन्द्रगुप्त को एक शक्तिशाली साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा देख कर चाणक्य के आनन्द का तो पार नहीं रहता था।

चाणक्य :—(नाट्येनारूह्यावलोक्य च सहर्षमात्मगतम्।) अये
सिंहासनमध्यास्ते वृषल :। साधु साधु।
नन्दैर्विमुक्तमनपेक्षितराजवृत्तैः
अध्यासित च वृषलेन वृषेण राज्ञाम्।
सिंहासनं सदृशपार्थिवसत्कृत च
प्रीतिं त्रयस्त्रिगुणयन्ति गुणा ममैते ॥२॥ अक ३

राक्षस भी, जो उसका इतना कट्टर बैरी था, उसके गुणों पर मोहित हो गया था। उसकी युवावस्था में ही इतनी उन्नति देखकर उसने ठीक ही कहा—

बाल एव हि लोकेन संभावितमहोन्नतिः।
क्रमेणारूढवान्राज्य यूथैश्वर्यमिव द्विपः॥ अंक ७

और आगे चलकर राक्षस चाणक्य के भाग्य की चन्द्रगुप्त जैसे प्रतिभाशाली सम्राट् का पक्ष लेने के कारण सराहना करता है—

सर्वथा स्थाने यशस्वी चाणक्य कुत।
द्रव्य जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियत प्रतिष्ठा॥
अद्रव्यमेत्य तु विविक्तनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजवृक्षवृत्त्या॥ अक ७

चन्द्रगुप्त का जो चित्र प्राचीन थोड़े बहुत योरोपीय इतिहासकारों और मुद्राराक्षस आदि में सुरक्षित ऐतिहासिक तथ्यों के पढ़ने से

हमारे सामने आता है उससे अवश्य यह प्रतीत होता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आदर्श सम्राट् चन्द्रगुप्त ही था। कौटिल्य के अनुसार सम्राट् को महाकुलीन, दैवबुद्धि, दीर्घदर्शी, धार्मिक, वीर, उत्साही, दृढ़निश्चयी आदि होना चाहिए।* और हम यह सुगमतापूर्वक अनुमान कर सकते हैं कि कौटिल्य के बताये निम्न आदर्श के समान चन्द्रगुप्त ने अपना जीवन बिताया होगा—"राजा का व्रत कर्तव्य के लिये सदा तैयार रहना है। उसका यज्ञ शासन सम्बन्धी कामो को ठीक ठीक करना है। सब प्रजा को एक समान देखना उसका पुण्य है। प्रजा के सुख मे उसका सुख है, प्रजा के हित में उसका हित है, उसको अपना नही परन्तु प्रजा का ही हित और सुख प्रिय होना चाहिए। राजा को सदैव अपने कर्तव्यो का पालन करते रहना चाहिए। राजा के आलस्य से ही शासन में सब विकार खड़े होते हैं।" हम सोच सकते हैं कि एक सम्राट् को उस समय प्रजा की उन्नति, हित और सुख के लिए उक्त आदर्श का पालन करना कितना आवश्यक होगा, जब कि उसके हाथ मे शासन की पूरी बागडोर रहती थी और वही राष्ट्र की स्वतन्त्रता और शक्ति का केन्द्र था।

चन्द्रगुप्त की विजयो, उसके एक विशाल साम्राज्य के निर्माण करने, उसकी सफल शासन प्रणाली और उसके समय देश और प्रजा की उन्नति और हित के बड़े बड़े कार्यों का जब हम ध्यान करते हैं तो हमे सुगमतापूर्वक विदित होता है कि वह न केवल भारतीय राजनैतिक इतिहास का सबसे महान् व्यक्ति है वरन् संसार के इतिहास के इने गिने सबसे महान् और सफल विजेताओ, राष्ट्र निर्माताओ और शासको मे भी उसका स्थान बहुत उच्च है। जिस साम्राज्य पर चन्द्रगुप्त शासन करता था वह वर्तमान भारतीय साम्राज्य से लगभग दुगना था। उसके साम्राज्य मे लगभग समस्त भारत, समस्त अफगा-

* महाकुलीनो दैवबुद्धि सत्वसपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्य-वागविसवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहोऽदीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिषत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः। पु० ६० अ० १

निस्तान, पूर्वी ईरान का एक बड़ा भाग, चीनी और रूसी तुर्किस्तान सहित मध्य-एशिया भी सम्मिलित थे। सेल्यूकस को हराने के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त ने ही सिकन्दर को भारत से बाहर खदेड़ निकाला था। इन सब बातों का पूरा अनुभव न करते हुए भी विन्सेन्ट स्मिथ ने चन्द्रगुप्त के लिये निम्नलिखित श्रद्धांजलि भेंट की है—"अट्ठारह वर्ष के अन्दर ही चन्द्रगुप्त ने पजाब और सिंध से यवन सेनाओं को बाहर निकाल दिया। विजयी सेल्यूकस को पराजित कर उसका मान मर्दन किया और भारत और साथ साथ एरियाना के अधिकांश भाग को अपने अधिकार में कर लिया। उसके इन कृत्यों के कारण हम उसे बड़ी सरलता से इतिहास के सबसे महान् और सफल अधिपतियों की पक्ति मे रख सकते हैं।"

सिकन्दर और उसके बाद सेल्यूकस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त अपने समय के ससार में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। यदि वह अपनी शक्ति को पश्चिम की ओर ही केन्द्रस्थ कर देता तो उसे कोई रोक न सकता और वह विशाल ईरान के साम्राज्य को, जो उस समय सिकन्दर के संहारक प्रहारों के कारण अन्तिम साँसे ले रहा था, पुनः उसके प्राचीन शौर्य पर पहुँचा देता। वह इजिप्ट, मेसेडन और ग्रीस के सुदूर प्रान्तों पर भी पुनः ईरान का प्रभुत्व स्थापित करने में सफल होता। परन्तु उस दशा में ईरान के लोग उसे अपना ही एक व्यक्ति कहते; और इस प्रकार सम्भवतः भारतवर्ष उसे सदा के लिये खो देता। दैवयोग से उसने एक विशाल भारतीय साम्राज्य स्थापित करने का विचार किया और थोड़े ही दिनों में उसे पूरा भी किया। उसका यह उद्योग प्राचीन ससार के सबसे बड़े राजनैतिक कार्यों मे से एक था। जैसा कि विंसेन्ट स्मिथ ने लिखा है—"चन्द्रगुप्त तथा उसके मन्त्री के हृदयों मे एक भारतीय साम्राज्य स्थापित करने की निर्धारणा हुई, उन्होंने उसे चौबीस वर्ष के अन्दर ही कार्य-रूप में परिणत कर दिया। इस साम्राज्य का विस्तार एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक था और

इसके अन्तर्गत समस्त भारत और अफगानिस्तान आदि थे। इतिहास में बहुत ही कम ऐसे राजनैतिक कृत्य मिल सकेंगे। केवल एक साम्राज्य ही स्थापित नहीं कर लिया गया था, प्रत्युत् उसकी व्यवस्था भी उपयुक्त ढग से की गयी थी। पाटलिपुत्र से संचालित सम्राट् की आज्ञा, सिन्ध नद तथा अरब सागर के किनारे के देशो तक बिना उल्लंघन के पालन की जाती थी। प्रथम भारतीय सम्राट् के कौशल द्वारा स्थापित इतना विशाल साम्राज्य सुरक्षित रूप से उसके पुत्र तथा पौत्र (अशोक) को भी मिला।"

भारत ने भी सदैव ही अपने इतिहास के इस सबसे प्रसिद्ध और प्रमुख व्यक्ति को सम्मान और श्रद्धा के साथ स्मरण किया है। बौद्ध परम्परा के अनुसार वह कुलीन और एक महान् सम्राट् था, जिसने बिना किसी प्रतिद्वंदी के राज्य किया। मजुश्री मूलकल्प में उसे उपयुक्त रूप से "महायोगी सत्यसन्धश्च धर्मात्मा स महीपतिः" कहा है। मुद्राराक्षस मे सुरक्षित ब्राह्मणीय परम्परा में उसे विष्णु का अवतार तक कहा गया है, जिसकी भुजाओ की म्लेच्छो से बचने के लिये पृथ्वी ने शरण ली—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुकलामास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राक्पोतकोटि प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्वेज्याना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्याश्चिरमवतु मही पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः ॥२१॥ अक ७

म्लेच्छ, जिनसे चन्द्रगुप्त ने देश की रक्षा की, असदिग्ध रूप से सिकन्दर और तत्पश्चात् सेल्यूकस की पराजयो की ओर संकेत करते हैं। प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्पराओ में भी कृतयुग के निर्माता के रूप मे चन्द्रगुप्त का उपयुक्त स्वागत किया गया है। वह बाद में होने वाले हिन्दू सम्राटो के लिये आदर्श रूप हुआ। गुप्तवंश के राजाओ ने मौर्यवश के प्रसिद्ध संस्थापक के नाम पर अपने पुत्रों के नाम रखना बड़े मान की बात समझी। स्वयं महान् समुद्रगुप्त बहुत अंशो में चन्द्रगुप्त मौर्य के कृत्यो से प्रभावान्वित हुआ। सम्भवतः

उसने ही इस महान् व्यक्ति के प्रति प्राचीन देहली के खण्डरों के बीच में आज भी खड़े हुए लोह-स्तम्भ पर अमिट पंक्तियों में अपनी श्रद्धांजलि छोडी। वह आज तक चन्द्रगुप्त मौर्य की विशाल विजयों और उसकी महानता का मूक प्रमाण धारण किये खडी है।

इन्हीं कुछ नयी खोजों और नये ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर यह नाटक आधारित है। इसके अतिरिक्त प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों के सिकन्दर सम्बन्धी वृत्तान्तों और साथ साथ बृहत्कथा तथा मुद्राराक्षस में सुरक्षित चाणक्य और चन्द्रगुप्त सम्बन्धी दन्तकथाओं का भी इस नाटक में बड़ी होशियारी के साथ प्रयोग किया गया है। हिन्दी साहित्य मे इस नाटक का वही स्थान होगा जो मुद्राराक्षस नाटक का संस्कृत साहित्य में है।

हरिश्चन्द्र सेठ
(एम० ए०, पी-एच० डी०,
प्रोफेसर, किंग एडवर्ड कालेज,)
अमरावती, (बरार)

निवेदन

जिस कथा पर श्री द्विजेन्द्रलालराय और श्री जयशंकर 'प्रसाद' सदृश कुशल कलाकार नाटकों की रचना कर चुके हैं उस पर मेरा लिखना धृष्टता के सिवा और क्या हो सकता है? परन्तु श्री० डाक्टर हरिश्चन्द्र सेठ की इस काल की नयी खोजों ने मुझे कुछ ऐसा आकर्षित किया कि मैं इस रचना के लोभ का संवरण न कर सका। डाक्टर साहब की इन नई खोजों का विवरण स्वयं उन्होंने इस नाटक की ऐतिहासिक प्रस्तावना में दिया है। इस प्रस्तावना के लिखने के लिए मैं उनका अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ।

इस नाटक के गान मेरी पुत्री रत्नकुमारी के रचे हुए हैं।

गोपाल बाग़,
जबलपुर
चैत्र शुक्ल १, १९९९

—गोविन्ददास

नाटक के मुख्य पात्र

शशिगुप्त—अश्वक जाति का सरदार, पीछे से चन्द्रगुप्त नाम धारण कर भारत सम्राट्

चाणक्य—शशिगुप्त का गुरु, पीछे से भारत का मन्त्री, पीछे से सन्यासी

आंभीक—तक्षशिला का राजा

पर्वतक—पंचनद देश का राजा

नंद—मगध का राजा

राक्षस—नंद का मंत्री, पीछे से चन्द्रगुप्त का मंत्री

शकटार—मगध का एक निर्वासित राज-कर्मचारी

वीरभद्र—एक गायक साधु

सिकन्दर—यूनान का सम्राट्

सिल्यूकस—सिकन्दर का सेनापति, पीछे से बैबीलोन का सम्राट्

पिथान—सिकन्दर का सिन्ध का क्षत्रप

हेलन—सिल्यूकस की लड़की

स्थान

१—मोर पर्वत

२—तक्षशिला

३—आरनस

४—पाटलिपुत्र

५—वितास्ता (झेलम) तट

६—इरावती (रावी) तट

७—विपाशा (व्यास) तट

८—उत्तर पश्चिम का वन

९—मकरान

१०—पर्वतक की राजधानी

११—बैबीलोन

१२—सिन्धु-तट

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—पश्चिमोत्तर भारत में कुनार और सिंधु नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश में हिमालय पर्वत का तीन शृंगो वाला 'मोर' शिखर।

समय—उषःकाल।

[पीछे और दोनों ओर गिरि-शृङ्ग दिखते हैं। पीछे के पर्वत ऊँचे हैं, जो दोनों ओर से ढालू होते हुए सामने नीचे हो गये हैं। पीछे के शृंगों में दूर ऊँचे-ऊँचे तीन शिखरों वाला एक शृङ्ग दिखायी देता है; यह सब शृङ्गों में ऊँचा है। इसकी चोटियाँ हिम से आच्छादित हैं। नीचे की श्रेणियाँ वृक्षों और तृणों से हरी हैं। भिन्न भिन्न तरु भिन्न भिन्न वर्णों और आकारों के पत्रों तथा पुष्पों से लदे हुए हैं। इन हरित श्रेणियों में यत्र तत्र जल के प्रपात गिर रहे हैं। उदय होते सूर्य की सुनहरी किरणें हिमच्छादित शृङ्गों तथा जल-प्रपातों को सुवर्ण के समान बना रही हैं। शृङ्गों के वृक्षों की चिकनी पत्रावली, कुसुम समूह तथा तृण चलती हुई पवन में लहराते हुए रवि-करों से अद्भुत रंग पा रहे हैं। एक चपटे से शिलाखण्ड पर शशिगुप्त और चाणक्य बैठे हैं। शशिगुप्त की अवस्था लगभग बीस वर्ष की है। उसका वर्ण गौर है। शरीर ऊँचा तथा अत्यन्त सुडौल और मुख अत्यधिक सुन्दर है। सिर पर काले केश लहरा रहे हैं। चौड़े ललाट, शान्त किन्तु तेजस्वी विशाल नेत्र, पैनी नासिका और निकलती हुई रेख से कुछ श्याम ऊपर के, एवं स्वाभाविक मुस्कराहट से युक्त नीचे के, ओष्ठ ने मुख के सौन्दर्य में कोई कोर कसर नहीं रखी है। चौड़े वक्षस्थल, लंबी भुजाओं, कृश कटि और पुष्ट जंघाओं के कारण शरीर की सुन्दरता मुख के सौन्दर्य से होड़ कर रही है। वह केशरी रंग के दुकूल (ऊनी) वस्त्र का उत्तरीय (दुपट्टा) और कौशेय वस्त्र का पीत अधोवस्त्र (धोती) धारण किये हुए है। वस्त्रों पर सुनहरा काम है। पैरों में काष्ठ की पादुकाएँ हैं। ललाट पर का केशर का बिन्दु तथा वक्षस्थल का केशर से रंगा हुआ पीत यज्ञोपवीत उसके उच्च कुलावतंस आर्य होने की सूचना दे रहे हैं। उसके

कानों में कुंडल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर* हाथों में वलय† और उँगलियों में मुद्रिकाएँ हैं। सभी भूषण रत्न जटित हैं। कमर में कमर-पट्टा है, जिसमें बाँई ओर सुनहरे कोष में खड्ग पड़ा है। उसके सारे स्वरूप तथा मुद्रा में बल और सौंदर्य, वीरता और कोमलता का अद्भुत मिश्रण दीख पड़ता है। चाणक्य की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है। उसका वर्ण श्याम है। शरीर ऊँचा तथा दुबला है और मुख कुरूप। चौड़ी और काली शिखा के अतिरिक्त सिर और मुख पर के केश, अर्थात् मूछें, दाढ़ी, मुड़े हुए हैं। चौड़े ललाट, रक्त नेत्र, शुक नासिका, लंबे कर्ण और क्रूर ओष्ठों ने उसके मुख को कुरूप बनाते हुए भयानक भी बना दिया है। वक्षस्थल चौड़ा है, किन्तु मासलता से नहीं, अस्थियों से। वक्षस्थल और भुजाओं की दिखती हुई अस्थियों के कारण शरीर कुरूपता और भयानकता में मुख से होड़ कर रहा है। वह श्वेत रंग के सूती मोटे वस्त्र का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है। ललाट का श्वेत चंदन के बिन्दु और वक्षस्थल का श्वेत यज्ञोपवीत उसके भी उच्च वशीय आर्य होने के द्योतक हैं। चाणक्य के शरीर पर एक भी आभूषण नहीं है, न वह कोई आयुध ही लिये हुए है। चाणक्य के सारे रूप और मुद्रा में कुरूपता और भयानकता के साथ ही बुद्धिमत्ता की गभीरता, दृढ़ता और तेजस्विता का विचित्र संमिश्रण है।]

चाणक्य—(सूर्य की ओर देखते-देखते, दृष्टि घुमा शशिगुप्त की ओर देखकर) वत्स, सूर्य की इस तेजस्विता का कारण है उसकी सातो रंगीन किरणों का इस प्रकार संमिश्रण कि उनका पृथकत्व दृष्टिगोचर ही नहीं होता। सूर्य में रंग होने पर भी वह एक श्वेत रग का दिखता है। जब वह उदित होता है, उसके तेज के सम्मुख समस्त नक्षत्र अस्त हो जाते हैं; कोई दूसरा प्रकाश उसकी दीप्ति के सम्मुख अपना आलोक दिखा ही नहीं सकता। (कुछ ठहरकर) भारत .. (कुछ रुककर) भारत के भी समस्त नरपति गण तथा गणतंत्र यदि एक हो जायँ, तो इसके तेज के सम्मुख यवन ! (फिर कुछ रुककर) आह ! एक यवन ही क्या यदि ससार के समस्त राष्ट्र भी इस पर आक्रमण करें तो उनकी वही दशा होगी जो चमकते हुए

---

* भुजबन्ध। † कड़े।

दीप पर पतंगों की, जो प्रज्ज्वलित दव पर रिमझिम बरसने वाली बूँदों की, जो जाग्रत ज्वालामुखी पर ओलों की।

शशिगुप्त—गुरुदेव, मैं ईरान से ही यवनों के पराक्रम को देख रहा हूँ। मैं जानता हूँ उनमें कितना बल है, कितनी शक्ति है। मैं ईरान में उनके पौरुष के कारण परास्त नहीं हुआ, मैं वहाँ असफल हुआ ईरानियों की निर्बलता के कारण। ईरानियों में शौर्य, त्याग, कष्ट सहिष्णुता, आदि गुण रह ही नहीं गये हैं। इतिहास में जिस ईरान का वर्णन पढ़ा था वह ईरान न जाने कहाँ गया। मैंने तो शूर ईरान की जगह कायर ईरान देखा। मैंने तो चरित्रवान् ईरान न देख चरित्रहीन ईरान देखा। (कुछ ठहर कर) गुरुदेव, यदि मैं ईरान भारतीय सेना लेकर जाता...

चाणक्य—भारतीय सेना, वत्स! भारतीय सेना जैसी तो अब कोई वस्तु ही नहीं रह गयी है। क्या इस समय यहाँ चक्रवर्ती रघु या राम का साम्राज्य है? (कुछ रुक कर) आह! यदि वही होता ..वही होता...

शशिगुप्त—आर्य, मेरे अश्वक ही यथेष्ट हैं। आप जानते हैं अभी भी वही अलक्षेन्द्र को रोक रहे हैं। आपके आशीर्वाद और आज्ञा से मैं अपने अश्वकों की सहायता से ही पहले तक्षशिला के देश द्रोही राजा आम्भीक को समाप्त करूँगा और फिर यवनों की इस बाढ़ को उत्तरापथ में ही रोक दूँगा, इतना ही नहीं, गुरुदेव, उन्हें मै यूनान तक खदेड़ सकता हूँ।

चाणक्य—(कुछ विचारते हुये) अश्वक बहुत दिनों तक अलक्षेन्द्र को रोके न रह सकेंगे, वत्स। तुम्हारे शौर्य, तुम्हारे साहस, तुम्हारे त्याग में मुझे सदेह नहीं है, किन्तु...किन्तु ..(चुप हो जाता है।)

शशिगुप्त—(उत्सुकता से चाणक्य की ओर देखते हुये) किन्तु . आर्य?

चाणक्य—शक्ति को तोलना पड़ता है, वत्स। यूनान से लेकर यहाँ तक के समस्त देशों को फलों के सदृश तोड़ता हुआ अलक्षेन्द्र आगे बढ़ा है। केवल अश्वकों के बल पर यवनों से युद्ध वीरता का द्योतक हो सकता है, पर सफलता नहीं मिल सकती।

शशिगुप्त—सफलता नहीं मिल सकती!

चाणक्य—कदापि नहीं; और इसका कारण यवन अधिक शक्तिशाली हैं, इतना ही नहीं है।

शशिगुप्त—तब ?

चाणक्य—तक्षशिला का अधिपति आभीक जो कर रहा है वह आर्यावर्त में दूसरे भी करने वाले हैं।

शशिगुप्त—(आश्चर्य से) ऐसा !

चाणक्य—हाँ, मेरे पास विश्वसनीय सूत्र से सवाद आये हैं कि उत्तर के वैराज्य गणतत्रों में से अनेक गणतत्रों के गणमुख्यों और गणराजों के पास अलक्षेन्द्र ने बडी बड़ी भेटें भेजी हैं।

शशिगुप्त—(और भी आश्चर्य से) ओह !

चाणक्य—हाँ, ये गणतंत्र ! (दाँत पीसकर) आह ! यदि मेरे पास शक्ति होती तो सबसे पहले मैं आर्यावर्त के इन गणतंत्रों को समाप्त करता।

शशिगुप्त—तो इन्हीं से आरंभ किया जा सकता है, आर्य !

चाणक्य—इस समय ?

शशिगुप्त—क्यों ?

चाणक्य—विदेशी और गृह-शत्रु दोनों से एक साथ युद्ध नहीं ठाना जा सकता।

शशिगुप्त—तब. .तब आर्य ?

चाणक्य—(गभीरता से विचारते हुए) वही तो सोच रहा हूँ। (कुछ ठहर कर) मगधेश नद और पचनद-नरेश पर्वतक दो ही इस समय आर्यावर्त के शक्तिशाली नरपति हैं। मगध के मंत्री राक्षस तक्षशिला के विश्व विद्यालय में मेरे सहपाठी थे। मैंने तुमसे कहा था न कि मैंने उन्हें इस विषय में एक पत्र भेजा है ?

शशिगुप्त—हाँ, कहा था।

चाणक्य—उनका कल रात्रि को उत्तर आ गया है।

शशिगुप्त—(उत्सुकता से) क्या लिखा है ?

चाणक्य—वहाँ से कोई आशा नहीं। नंद महाविलासी है। राक्षस

देशभक्त हैं, किन्तु उनके हृदय में देश-भक्ति की अपेक्षा कदाचित् स्वामि-भक्ति अधिक है। पचनद-नरेश से मुझे आशा है, किन्तु एक ओर देशद्रोही आभीक दूसरी ओर गणतत्रों के लालची गणमुख्य और गणराज, तीसरी ओर विलास प्रिय न द। यदि पंचनद-नरेश हमें सहायता भी करें तो भी हमारी इस समय की शक्ति यवनों को जीतने में कदाचित् ही समर्थ हो सके। (कुछ ठहरकर) फिर एक बात और है।

शशिगुप्त—क्या ?

चाणक्य—कहीं ठीक समय पचनद-नरेश भी विश्वासघात करें तो ! (कुछ रुककर) वत्स, मेरा मत है कि इस समय तुम और तुम्हारे अश्वक व्यर्थ ही अपनी शक्ति क्षीण कर रहे हो। यवनों से युद्ध कर मैं असफल नहीं होना चाहता। यदि हम इसी प्रकार युद्ध करते रहे तो हमारे जन समुदाय पर क्रूर अलक्षेन्द्र के अमानुषिक अत्याचार बढते जाँगे। हमारा देश शताब्दियों के लिये दासता की शृंखलाओं में जकड़ जायगा, इतना ही नहीं, उस क्रूरता के परिणाम को मिटाने के लिये हमें युगों तक प्रयत्न करना पड़ेगा। उस क्रूर ने ईरान में तथा तुम्हारे अश्वकों पर जो जो अत्याचार किये हैं, और कर रहा है, जिस प्रकार जन-संहार हुआ है और हो रहा है तथा इस संहार में जिन लोमहर्षण प्रणालियों का उपयोग किया गया है और किया जा रहा है, उसे तो तुम स्वय देख चुके हो, और देख रहे हो।

शशिगुप्त—तब, तब क्या किया जाय, गुरुदेव ? (उत्तेजना से) विदेशी इस पवित्र भूमि को पददलित करें और हम चुपचाप देखते रहें, हमारी स्वतंत्रता का अपहरण हो और हम हिलें डुलें तक नहीं, यह तो कल्पना के बाहर की स्थिति है।

चाणक्य—(गभीरता से विचार करते हुए) मानता हूँ; और इसीलिये इतनी गंभीरता मे सोच रहा हूँ कि क्या किया जाय।

शशिगुप्त—आपको भगवान ने ब्रह्मा की बुद्धि दी है। आप ही उपाय निकाल सकते हैं।

[चाणक्य नेत्र वन्द कर लेता है। शशिगुप्त गभीरता से एक टक चाणक्य की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—(नेत्र खोलकर कुछ प्रसन्नता से) एक उपाय है, वत्स।

शशिगुप्त—(प्रसन्न होकर) है, गुरुदेव ?

चाणक्य—हाँ, मैं समझता हूँ है।

शशिगुप्त—(उत्सुकता से) तो शीघ्र ही कहिए न, आर्य।

चाणक्य—तुम्हें वर्तमान युद्ध का अन्त कर अलक्षेन्द्र का क्षत्रप बनना होगा।

शशिगुप्त—(आश्चर्य से) मुझे युद्ध का अन्त कर अलक्षेन्द्र का क्षत्रप बनना होगा !

चाणक्य—हाँ।

शशिगुप्त—(कातरता से) गुरुदेव, गुरुदेव, आप यह कैसी आज्ञा दे रहे हैं ? . क्या . ...

चाणक्य—यही एक उपाय है, इसके अतिरिक्त देश की स्वाधीनता बचाने के लिए मुझे और कोई मार्ग नहीं दिखता।

शशिगुप्त—मेरे अलक्षेन्द्र का क्षत्रप बनने से देश की स्वाधीनता कैसे बचेगी ?

चाणक्य—ठीक समय पर विद्रोह करने से।

[शशिगुप्त गम्भीर विचार में मग्न हो सिर नीचा कर लेता है। चाणक्य शशिगुप्त की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

शशिगुप्त—(सिर उठाकर धीरे धीरे) आर्य, आपका आज्ञा पालन मैं अपना कर्तव्य ही नहीं, धर्म्म समझता हूँ, परन्तु यह आज्ञा . यह आज्ञा... मुझसे...(चुप हो जाता है।)

चाणक्य—(विकट हँसी हँसकर) तुमसे न मानी जायगी, क्यों ?

शशिगुप्त—आर्य, मैं आपकी आज्ञा से युद्ध कर सकता हूँ। भगवान ने जितना पौरुष, जितनी शक्ति मुझे दी है उस सारे पौरुष, उस समस्त शक्ति को लगा युद्ध में जीत सकता हूँ ..

चाणक्य—और उस पौरुष तथा शक्ति को लगाने के पश्चात् हार भी सकते हो।

शशिगुप्त—मैं तो नहीं समझता कि अन्त में मैं हारूँगा, किन्तु...

चाणक्य—किन्तु मैं समझता हूँ कि जिस प्रकार तुम युद्ध कर रहे हो उस प्रकार के युद्ध में तुम अवश्य हारोगे। (कुछ रुककर) वत्स, जानते हो तुम्हारी अन्तिम हार का क्या परिणाम होगा? जो मैंने अभी कहा था, वह। देश शताब्दियों के लिये दासता की शृंखलाओं में बँध जायगा।

शशिगुप्त—किन्तु, गुरुदेव, अलक्षेन्द्र का क्षत्रप होना...

चाणक्य—महान साध्य के लिए।

शशिगुप्त—और क्षत्रप होकर फिर विश्वासघात कर विद्रोह करना...

चाणक्य—महान साध्य के लिए।

शशिगुप्त—तो संसार में साधन का कोई महत्त्व नहीं?

चाणक्य—(दृढता से) मेरी दृष्टि में कुछ भी नहीं।

शशिगुप्त—(अधीरता से) गुरुदेव ..गुरुदेव ..

[चाणक्य फिर अपनी विकट हँसी हँसता है। शशिगुप्त एक टक उसकी ओर देखता है।]

चाणक्य—वत्स, इस समय आर्यावर्त में तुमसे अधिक वीर, तुमसे अधिक साहसी, तुमसे अधिक आदर्शवादी, तुमसे अधिक देशभक्त, तुमसे अधिक शुद्ध अन्तःकरण और आचरण वाला और कोई व्यक्ति नहीं। तुम्हीं यूनानियों को इस देश से निकाल इस देश में एक साम्राज्य की स्थापना कर सकते हो। उसके चक्रवर्ती सम्राट् हो सकते हो। तुम्हारी जीत इस देश को ससार का पुनः सर्व श्रेष्ठ देश बना सकती है और तुम्हारी हार इसे शताब्दियों के लिए दास। परन्तु ..परन्तु, वत्स, उस जीत के लिए अवसर देखना होगा। विना उचित समय के कोई कार्य नहीं किया जा सकता। युद्ध होगा। वह अनिवार्य जान पड़ता है, किन्तु समय पर। इस समय तो युद्ध का अन्त ही करना होगा। (शशिगुप्त को उत्तर न देते देख, कुछ ठहरकर) क्या तुम्हें मेरी बुद्धि पर विश्वास नहीं रहा?

शशिगुप्त—(जल्दी से) क्या कह रहे हैं, आर्य?

चाणक्य—तो क्या तुम्हें मेरी देशभक्ति पर सन्देह है?

शशिगुप्त—यह कभी हो सकता है, गुरुदेव।

चाणक्य—तो बस, जो उपाय मैंने सोचा है उसी को तुम्हें कार्य रूप में परिणत करना होगा। [खड़ा होता है।]

शशिगुप्त—(खड़े होते हुए) शशिगुप्त आर्य चाणक्य की कोई भी आज्ञा उल्लंघन करने की शक्ति ही नहीं रखता।

[शशिगुप्त सिर भुकाता है। चाणक्य अपना दाहना हाथ शशिगुप्त के सिर पर रखता है।]

परदा गिरता है

दूसरा दृश्य

स्थान—तक्षशिला के निकट जंगली मार्ग

समय—सन्ध्या

[बीच में छोटा सा मार्ग दिखता है; दोनों ओर घना जंगल है। कुछ यवन सैनिकों का प्रवेश। अवस्था में सब अधेड़ हैं और वर्ण में गोरे। सभी ऊँचे पूरे सुडौल शरीर और सुन्दर मुखों के हैं। वे सिर पर छज्जेदार ताम्र का शिरस्त्राण (*helmet*) लगाये हैं। शरीर पर ताम्र के ही कवच (*armour*) पहने हैं। पैरों में चर्म के जूते हैं। कमर में बाँई ओर खड्ग लटक रहा है और दाहिनी ओर छुरी। दाहने हाथों में बहुत ऊँचे ऊँचे शल्य हैं।]

एक सैनिक—अपने देश में कैसी कैसी विचित्र बातें इस देश के लिए सुनते थे ?

दूसरा—वैसा ही तो है भी, भाई।

तीसरा—हाँ, देखो न, कितना ऊँचा पर्वत पार कर आये।

चौथा—नदियाँ, निर्झर क्या छोटे हैं ?

पाँचवाँ—और वन भी महान।

छठवाँ—वन के वृक्ष तो इतने बड़े हैं, जितने कभी नहीं देखे थे।

सातवाँ—हाँ, वट वृक्ष के नीचे तो सेना की एक टोली की टोली ठहर जाती है।

आठवाँ—और यह वृक्ष कैसा विचित्र होता है ! कहाँ से निकला यही कोई नहीं कह सकता। सैकड़ों पीड़ें होती हैं।

नवाँ—सुना है, आगे चलकर ये वृक्ष इतने बड़े बड़े मिलेंगे कि हमारी सारी की सारी सेना इनके नीचे ठहर सकेगी।

दसवाँ—अरे कोई कोई तो सुना, इतने बड़े हैं कि हमारे सारे यूनान देश पर छाया कर सकते हैं।

छठवाँ—यह तो बातें हैं।

दसवाँ—नहीं, नहीं, बातें नहीं, हो सकता है। जब तुमने हाथियों का वर्णन सुना था, उस समय भी तुम यही कहते थे कि इतना बड़ा पशु हो ही नहीं सकता, फिर देखा, वैसा ही निकला या नहीं?

छठवाँ—हाँ, मित्र, हाथी तो अवश्य वैसा ही निकला

दसवाँ—और वट वृक्ष भी सारे यूनान पर छाया करने योग्य निकलेगा।

चौथा—एक बात और सुनी है?

छठवाँ—क्या?

चौथा—यहाँ एक विचित्र जाति की चीटियाँ होती हैं। वे कुत्तों के बराबर होती हैं और पृथ्वी के भीतर घुसकर सोने की रेत लाती हैं।

छठवाँ—कुत्ते के बराबर चीटियाँ?

चौथा—आश्चर्य की क्या बात है? हमारे घोड़ों से इनके हाथी कितने बड़े निकले, इनकी चीटियाँ भी कुत्तों के बराबर हो सकती हैं।

छठवाँ—और सोने की यह रेत कैसी?

पाँचवाँ—(पृथ्वी को ठोक कर) यहाँ की सारी पृथ्वी के नीचे सोना है।

छठवाँ—और उस सोने को खोदकर लाती हैं चीटियाँ, क्यों?

पाँचवाँ—हाँ, हाँ. तभी तो यहाँ इतना सोना दिखता है।

छठवाँ—क्या बात करते हो!

सातवाँ—जब देख लोगे तब मान जाओगे, जैसे हाथी को देखकर मान गये।

दूसरा—जो कुछ हो, पर है यहाँ सभी कुछ विचित्र (पहले सैनिक की ओर संकेत कर) और इतने पर भी ये कहते हैं कि अपने देश में इस देश के लिए जो विचित्र बातें सुनी थीं, वे...

पहला—मैंने यहाँ के मनुष्यों के संबन्ध मे कहा था। सुना था यहाँ के मनुष्य न मास खाते हैं, न खेती करते हैं और न घरों में रहते हैं। वृक्षों के नीचे उनका निवास है वृक्ष ही उन्हें वस्त्र देते हैं और वे ही भोजन। जब रोग होता है तब यहाँ के मनुष्य मरुस्थल में जाकर मर जाते हैं। पर ऐसी कोई बात नहीं निकली।

दूसरा—हाँ, हाँ, सो तो ठीक है।

तीसरा—पर मनुष्यों में भी विचित्रता अवश्य है।

पहला—कैसी?

तीसरा—तक्षशिला के राजा को देखो। एक सहस्र टेलेंट* में देश बेच दिया। हमारे यूनान में यह हो सकता था?

चौथा—और एक बात नहीं सुनी?

तीसरा—क्या?

चौथा—ईरान में हमें जिस शशिगुप्त ने बहुत कष्ट दिया था, यहाँ भी जिसने अपने अश्वकों के द्वारा हमारा मार्ग रोक रखा था, वह भी युद्ध बन्द कर कल तक्षशिला की सभा में हमारे राजराजेश्वर की शरण में आने वाला है।

पहला—इसमें यहाँ के मनुष्यों की विचित्रता नहीं है।

तीसरा—तब किसकी है?

पहला—हमारे सम्राट की।

तीसरा—कैसे?

पहला—वे साधारण अस्थि, मांस और रुधिर के मनुष्य थोड़े ही हैं; वे हैं अवतार। उनका सफल सामना कर सकने की किसमें शक्ति है?

सातवाँ—हाँ, राजा आंभीक ने बड़ी बुद्धिमानी का काम किया।

आठवाँ—और शशिगुप्त भी घूम भटक कर सीधे मार्ग पर आ गया।

[हेलन का गाते हुए प्रवेश। हेलन की अवस्था लगभग अठारह वर्ष की है। उसका रंग हिम के सदृश स्वच्छ और श्वेत है। शरीर ऊँचा तथा सुडौलता में ढला हुआ है और मुख अत्यन्त सुन्दर। रसीले तथा भोले नेत्र, पतली नासिका तथा ओष्ठ और लाली लिये, भरे कपोलों ने सुन्दर मुख की सुन्दरता को कई गुना बढ़ा दिया है। सिर के केश सुनहरे और नेत्रों की पुतलियाँ नीली हैं। उसका वक्षस्थल उन्नत, कटि कृष, भुजाएँ लंबी और हाथों की उँगलियाँ बहुत पतली हैं। उसके मुख, शरीर, मुद्रा, और चाल से सौन्दर्य के साथ ही सरलता टपकी सी पड़ती है। शरीर पर वह गले से लेकर पैर तक एक लम्बा सिला

* यूनानी सिक्का। एक सहस्र टेलेंट = अड़तीस लाख रुपया।

हुआ वस्त्र (*Chiton*) धारण किये हुए है। वस्त्र रेशमी है। उसका रंग गुलाबी है और उसके नीचे बैंगनी मोटी किनारी है। इस वस्त्र के ऊपर एक ऊनी वस्त्र (*Hination*) उत्तरीय के सदृश ओढ़ा हुआ है। दोनों वस्त्रों पर सुनहरी काम है। कानों में लम्बे कर्ण फूल, गले में हार, भुजाओं पर भुजबन्ध, हाथों में वलय और उंगलियों में मुद्रिकाएँ हैं। सब आभूषण सुवर्ण के हैं, जिनमें रत्न लगे हैं। उसके हाथों में एक श्वेत कपोत है, जिसके गले में वह एक भोजपत्र बाँधने का यत्न कर रही है। उसे देखकर सैनिक अभिवादन कर बड़ी सावधानी से खड़े हो जाते हैं।]

गान

सुन्दर एक नया संसार।
जहाँ पहुँच मधुमयी कल्पना हो जाती साकार।
अवनी का हरिताञ्चल भरते खिल वसन्त के फूल,
उषा उतरता पवनान्दोलित उड़ती केसर धूल,
भ्रमर भूल जाते अपनापन पाकर मधु का सार।
सुन्दर एक नया०।
उर्वी का उर तापित होता सह दिनकर का रोष,
विधुवदनी रजनी बिखराती सञ्चित मुक्ता कोष,
हँसते उर पर झिलमिल उलझे सुलझे तारक हार।
सुन्दर एक नया०।
भू पर गजदल, नभ में बादल, सोंधी शिशिर फुहार,
उमड़े सरि, सर, 'पीउ कहाँ' सुन नाचें मोर पुकार,
स्वर लहरी में झूल रहे झूलों पर राग मलार।
सुन्दर एक नया०।

हेलन—(गान पूर्ण होने पर भी जब भोजपत्र कबूतर के गले में अच्छी प्रकार नहीं बँधता तब एक सैनिक से) मेरी सहायता करोगे ?

[एक सैनिक शीघ्रता किन्तु आदर से हेलन के निकट आकर, अभिवादन कर, वह पत्र अच्छी प्रकार कपोत के गले में बाँध देता है।]

हेलन—(प्रसन्नता पूर्वक सैनिकों से) इस भूमि पर पदार्पण करने के

पश्चात् मैंने जो कविता की है, और जिसे मै गा रही थी, वही इस पत्र में लिख यूनान भेज रही हूँ। क्यों, कैसी कविता है?

एक सैनिक—अत्यन्त सुन्दर, कुमारी।

हेलन—कविता में देश का सच्चा चित्र खिंचा है या नहीं?

दूसरा सैनिक—सर्वथा सच्चा, जीता जागता, कुमारी।

हेलन—और यह कपोत कितने दिनों मे यूनान पहुँच जायगा?

[सैनिक एक दूसरे के मुखों की ओर देखते है। कुछ मुस्कराते है।]

हेलन—(मुस्कराकर) तुम लोग हँसते हो, कदाचित् समझते हो, कभी न पहुँचेगा, पर तुम इन कपोतों को जानते ही नहीं। यह मुझे राजा आभीक ने दिया है और उनका कहना है कि जिस पथ पर हमें वर्षों लग गये उस पथ को यह तीन दिनों में समाप्त कर लेगा।

[सैनिक विस्मय से एक दूसरे की ओर देखते हैं।]

हेलन—तुममे से एक, जो वृक्ष पर चढ़ना जानता हो, आओ।

[एक सैनिक हेलन के निकट आता और अभिवादन कर सावधानी से खड़ा हो जाता है।]

हेलन—देखो, (कपोत को उस सैनिक को देते हुए) इसे लेकर तुम एक ऊँचे से ऊँचे वृक्ष पर चढना और वहाँ से इसे पश्चिम दिशा की ओर उड़ा देना। बस तीन दिनों में यह यूनान पहुँच कर ही ठहरेगा।

[वह सैनिक उस कबूतर को ले लेता और अभिवादन कर जाता है।]

हेलन—(कुछ ठहर कर शेष सैनिकों से) तुम लोग तो बड़े प्रसन्न हो? (मुस्कराते हुए) बिना एक बूँद भी रक्त बहे, कल राजराजेश्वर तक्षशिला नगर में प्रवेश करेंगे, इसी कारण यह प्रसन्नता है, क्यों?

एक सैनिक—अवश्य, कुमारी।

दूसरा—इससे अधिक हर्ष की और क्या बात हो सकती है, कुमारी?

हेलन—देश सुन्दर है, सैनिकगण, मनुष्य भी सुन्दर हैं, परन्तु कहाँ यूनान और कहाँ यह देश! सुना था रघु नामक एक महारथी इस देश में चक्रवर्ती सम्राट् हुआ था। सुना था राम नामक एक योद्धा के रूप में ईश्वर ने इस भूमि पर अवतार ग्रहण किया था। सुना था भीम नामक एक पराक्रमी

पुरुष ने हाथियों को उठा उठा कर बड़ी तीव्र गति से आकाश में फेंका था और उनके अस्थि-पंजर शताब्दियों तक वहीं की चक्रवायु में घूमते रहे थे। सुना था अर्जुन नामक एक महाबली अपने बाण से पाताल छेदकर पताल-गंगा को पृथ्वी पर लाया था, परन्तु...परन्तु अब तो यहाँ आभीक और शशिगुप्त के सदृश कायर और देशद्रोही निवास करते हैं। कहाँ यूनान और कहाँ यह देश, सैनिकगण!

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

तीसरा—परसों हमारी देवी एथेना का भी तो पूजन होगा, कुमारी?

हेलन—हाँ, बड़ी धूम-धाम से।

चौथा—बिना रक्त बहे यह सफलता मिल रही है, तब देवी एथेना का धूमधाम से पूजन क्यों न हो?

हेलन—गाओ, देवी की प्रार्थना के गीत गाओ, सैनिकगण, वे ही हमें इस देश को विजय करने की शक्ति प्रदान करेंगी।

[हेलन गाना आरम्भ करती है। उसी को सैनिक दुहराते हैं।]

देवि! दो आज विजय वरदान।
अलक्षेन्द्र का भारत पर हो अनवरुद्ध अभियान।
रणचंडी के अट्टहास से कांपे हिमगिरि शृङ्ग,
रिपु-शोणित धारा से होवे लोहित गंगा-अंग।
वीरों के उद्बुद्ध शौर्य का हो ऐसा सम्मान,
आहत हो अवनी पर लोटे अरिदल का अभिमान।
सुन भेरी का भीम-नाद हो सागर गर्जन शान्त
शस्त्रों के दल बादल बन कर ढाँकें व्योम नितान्त।
जयलक्ष्मी के अञ्चल पटसी विजय ध्वजा फहरान,
जाग्रत कर दे शूर गणों में विश्व-विजय का ध्यान।

[गान गाते गाते सब का प्रस्थान।]

परदा उठता है

तीसरा दृश्य

स्थान—तक्षशिला का सभा भवन

समय—मध्याह्न

[विशाल सभा भवन है। भवन की छत काष्ठ के स्थूल स्तम्भों पर स्थित है। प्रत्येक स्तम्भ के नीचे गोल कमलाकर कुम्भी (चौकी) और ऊपर भरणी (टोडी) है। भरणी के दोनों ओर काष्ठ की एक एक गज शुण्ड बनी है, जो ऊपर की ओर उठकर छत को उठाये हुए है। कुंभियों, भरणियों और स्तम्भों पर खुदाव का काम है, जिसके बीच बीच में हाथी दाँत लगा हुआ है। तीन ओर भित्तियाँ (दीवाल) हैं। छत और भित्तियें केशरी रंग से रगी हैं, जिस पर सुन्दर चित्रकारी है। दाहनी और बाँईं ओर की भित्तियों के सिरों पर एक एक द्वार है। द्वार खुले हुए हैं, जिनसे बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखायी देता है, जो सूर्य के प्रकाश से देदीप्यमान है। द्वारों की चौखटों और कपाटों पर भी खुदाई का काम है और इन पर भी यत्र तत्र हाथी दाँत लगा हुआ है। भवन की पृथ्वी पर फूलदार रंगी हुई सूत की मोटी बिछावन बिछी है। बिछावन पर पीछे की भित्ति के बीचों बीच, उसके बहुत सन्निकट, काष्ठ का सिंहासन रखा हुआ है। सिंहासन के पाये सिंहाकार बने हैं। सिंहासन पर खुदाई का काम है और जहाँ तहाँ हाथी दाँत लगा हुआ है। सिंहासन पर सुनहरे काम की गद्दी बिछी है और उसी प्रकार के तकिये लगे हैं। सिंहासन के नीचे पैर रखने के लिये लकडी का एक पादपीठ रखा है। पादपीठ में खुदाई का काम है और इस पर भी एक सुनहरी काम की छोटी सी गद्दी है। सिंहासन के दाहनी और बाँईं ओर एक पंक्ति में लकडी की आसंदियाँ (चौकियाँ) रखी हुई हैं। इन पर भी खुदाव है और इन पर श्वेत वस्त्रों से ढकी हुई गद्दियाँ बिछी हैं तथा तकिये लगे हैं। सिंहासन और सिंहासन के आसपास की आसंदियों के सामने कुछ दूर आगे हटकर दाहनी ओर व्यासपीठ है। यह सभी आसंदियों से ऊँची किन्तु सिंहासन से कुछ नीची आसंदी है। यह भी काष्ठ की है और इस पर भी खुदाई का काम है। व्यासपीठ पर भी श्वेत वस्त्र से ढकी गद्दी बिछी है तथा तकिये लगे हैं। व्यासपीठ के सामने अर्द्ध चन्द्राकार रूप में लकडी की आसदियों की कई पंक्तियाँ रखी हुई हैं। इनके मुख सिंहासन की ओर हैं। इन आसंदियों पर भी खुदाई का काम है और इन पर भी श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियाँ बिछी हैं तथा तकिये लगे हैं। इन आसंदियों की पंक्तियों के ठीक बीच से सिंहासन तक जाने के लिए मार्ग है, जिससे पंक्तियाँ दो विभागों में बँट गई हैं। सभाभवन कदली-वृक्षों, पुष्प-पत्रों के बन्दनवारों और मंगल-कलशों से सुशोभित है। स्थान स्थान पर रजत की ऊँची ऊँची धूपदानियों में धूप जल रही है। सिंहासन रिक्त है। सिंहासन की दाहिनी ओर की आसंदियों में से

पहली आसदी पर आमीक बैठा है। उसकी अवस्था बीस वर्ष के लगभग है। उसका वर्ण गौर है, पर शरीर ठिंगना और दुबला। गौर वर्ण होते हुए भी न मुख सुन्दर है और न शरीर। ललाट पर केशर विन्दु तथा वक्षस्थल पर पीत यज्ञोपवीत है। वह दुकूल वस्त्र का केशरी रंग का उत्तरीय और कौशेय वस्त्र का पीत अधोवस्त्र धारण किये है। वस्त्रों पर सुनहरी काम है। सिर पर मुकुट, गले में हार, भुजाओं पर केयूर, हाथों में बलय और उँगलियों में मुद्रिकाएँ हैं। सब आभूषण सुवर्ण के रत्नजटित हैं। कमरपट्टे में बाँई ओर सुनहरी कोष में खड्ग है। उसके पैरों में काष्ठ की पादुकाएँ हैं। उसके निकट की दूसरी आसंदी पर शशिगुप्त बैठा है। उसकी वेष भूषा पहले दृश्य के सदृश है। इतना ही अन्तर है कि सिर पर वह भी रत्नजटित मुकुट लगाये हुये है। उसका मुख अत्यन्त म्लान है। दाहनी ओर की शेष आसदियाँ रिक्त हैं। सिंहासन की बाईं ओर की आसंदियों में से पहली आसदी पर आमीक का मत्री बैठा हुआ है। उसकी अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष की है। उसका वर्ण गौर है और शरीर ऊँचा पूरा। मुख न सुन्दर है और न कुरूप। चौड़ी शिखा को छोड सिर और मुख पर के केश मुँड़े हुए हैं। ललाट पर श्वेत चन्दन विन्दु और वक्षस्थल पर श्वेत यज्ञोपवीत है। वह श्वेत सूती उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए है। शरीर पर और कोई आभूषण नहीं है। पैरों में काष्ठ की पादुकाएँ पहने है। उसके पास की दूसरी आसंदी पर चाणक्य विराजमान है। चाणक्य की वेष भूषा पहले दृश्य के सदृश है। बाँई ओर की शेष आसंदियां पर कुलपुत्र* सामन्त† बैठे हैं। कुछ की वेष भूषा ब्राह्मणों के सदृश है और कुछ की आमीक के समान। अर्द्धचन्द्राकार पंक्तियों में रखी हुई आसदियों पर नागरिक बैठे हुए हैं। सभी का वर्ण गौर है। अधिकांश व्यक्ति ऊँचे पूरे सुडौल शरीर तथा सुन्दर मुख के हैं। वेष भूषा सभी की आभीक और शशिगुप्त के सदृश है। सारे सभाभवन में सबसे अधिक सुन्दर और तेजस्वी शशिगुप्त है और सबसे अधिक कुरूप और भयानक चाणक्य। दोनों अपने अपने विशिष्ट रूपों के कारण सभाभवन में बैठे हुए व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। नेपथ्य में शृङ्ग, रम्मट, शख, भेरी और जयघट पंच महावाद्यों की धीमी ध्वनि आ रही है। (दाहने द्वार से महाप्रतिहार का प्रवेश। महा प्रतिहार लगभग साठ वर्ष की अवस्था का गौर वर्ण, ऊँचा पूरा मोटा

---

* राजा के नातेदार। † राज कर्मचारी।

व्यक्ति है। सिर पर लंबे बाल तथा लबी मूँछें और दाढ़ी है। सभी केश श्वेत हो गये हैं। ललाट पर श्वेत चन्दन विन्दु लगा है। सिर पर वह श्वेत पगडी बाँधे है और शरीर पर श्वेत लवा कचुक (एक प्रकार का अँगरखा) तथा अधोवस्त्र पहने है। कमर पर सुनहरी कमरपट्टा है, जिसके बाईं ओर सुवर्ण की मूठ का खड्ग लटक रहा है। वह भी सुवर्ण के कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ धारण किये है। पैरों में काष्ठ की पादुकाएँ हैं। उसके बाँयें हाथ में ऊँची और मोटी सुवर्ण की एक छडी है और दाहने हाथ में शंख है।]

महाप्रतिहार—(शंख बजाकर) जय, यूनान सम्राट्, राजराजेश्वर, विश्व-विजेता, अलक्षेन्द्र महाराज की जय !

[फिर शंख बजाकर महाप्रतिहार एक ओर खड़ा हो जाता है। सभाभवन में उपस्थित सब व्यक्ति खड़े हो जाते हैं। आमीक और उसका मंत्री दोनों दाहनी ओर के द्वार तक जाकर द्वार के आस पास खड़े होते हैं। द्वार से का० की खुदाई ने काम तथा हाथी दाँत से विभूषित शिविका पर विराजमान सिकन्दर आता है सिकन्दर की अवस्था लगभग सत्ताइस वर्ष की है। उसका वर्ण गौर है, किन्तु र में थोडी सी गुलाबी झाँई है। शरीर ऊँचा पूरा, सुडौल और मुख सुन्दर है। सि के बाल लम्बे हैं, पर मूँछे दाढ़ी मुडी हुई हैं। मुख और मुद्रा से वीरता तथ क्रूरता टपक रही है। वह शरीर पर पैरों तक लबा सिला हुआ एक श्वेत रेशमी वस्त्र (*chiton*) पहने है। उसके ऊपर वह एक लबा ऊनी वस्त्र (*cholamys*) ओढे है, जो दाहनी ओर के कन्धे पर इकट्ठा कर एक सोने के रत्न जटित भूषण से अटका दिया गया है। सिर पर एक गोल छज्जेदार टोपी है, जिसके बीच में कलँगी लगी हुई है। उसके सभी वस्त्रों पर सुनहरी काम है। भूषणों में उँगलियों की रत्न जटित अगूठियों के अतिरिक्त और कोई भूषण नहीं है। दाहने हाथ में सोने की मूठ का खड्ग है। उसकी शिविका को आठ भारतीय उठाये हुए हैं। वे गेहुँए वर्ण और गठीले शरीर के ऊँचे पूरे व्यक्ति हैं। शिविका-वाहक मोटे सूती अधोवस्त्र पहने हैं। उनके ऊपर का शरीर शिविका उठाने के कारण खुला हुआ है और उत्तरीय को उष्णीश के रूप में वे सिर पर बाँधे हैं। कुण्डल, हार केयूर और वलय वे भी पहने हैं। सब भूषण सुवर्ण के हैं। वे नगे पैर हैं। शिविका की दाह और हेलन चल रही है, जो सिकन्दर से धीरे धीरे बातें कर रही है।

भूषा दूसरे दृश्य के सदृश है। शिविका के पीछे तीन स्त्रियाँ चल रही हैं। बीच वाली सिकन्दर के सिर पर छत्र लगाये है। यह छत्र-वाहिका है। छत्र की डाँडी हाथी दाँत की है। छत्र श्वेत कौशेय वस्त्र का बना है, जिस पर रुपहरी जरी का काम है। छत्र में मोतियों की झालर लगी है। दो चामर वाहिकाएँ हैं। ये दोनों सिकन्दर पर सुवर्ण डाँडियों वाले सुरा गाय की पुच्छ के श्वेत चामर डुला रही हैं। तीनों स्त्रियाँ युवती हैं। सब गौर वर्ण की ऊँची पूरी, सुन्दर मुखों वाली हैं। सभी नीचे के अंग में चमकीले कौशेय वस्त्र धारण किये हैं और वक्षस्थल पर उसी प्रकार के वस्त्र बाँधे हैं। सिर सबके खुले हैं और केशों के जूड़ों में पुष्प मालायें बँधी हैं। ललाट पर लाल टिकली है और माँग में सेंदुर। सभी सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित हैं। इन स्त्रियों के पीछे सिल्यूकस और पिथान चल रहे हैं। सिल्यूकस की अवस्था लगभग पैंतालीस वर्ष की है। वह गौर वर्ण का ऊँचा पूरा व्यक्ति है। देखने से जान पड़ता है कभी सुन्दर रहा होगा। पिथान लगभग पैंतीस वर्ष का गोरे रंग का, ऊँचा पूरा मनुष्य है। देखने में साधारणतया सुन्दर है। इनके पीछे कई यूनानी सेनाध्यक्ष हैं। सभी गौर वर्ण के, ऊँचे पूरे व्यक्ति हैं। सिल्यूकस, पिथान तथा सब यूनानियों की वेष भूषा सिकन्दर के सदृश है। सबका सिर झुका झुकाकर स्वागत करने के पश्चात् आम्भीक और उसका मंत्री शिविका के बाँईं ओर चलने लगते हैं। शिविका सिंहासन के समीप रखी जाती है और सिकन्दर शिविका से उतरता है। सारी सभा सिर झुकाती है। सिकन्दर इस अभिवादन के उत्तर में एक बार थोड़ा सा सिर झुका सिंहासन पर बैठता है। तीनों स्त्रियाँ सिंहासन के पीछे खड़ी होती हैं। शिविका-वाहक रिक्त शिविका को उठाकर ले जाते हैं। आम्भीक आगे बढ़कर हेलन को शशिगुप्त के समीप की आसंदी पर बैठाता है। आसंदी पर बैठते-बैठते शशिगुप्त को देख वह कुछ ठिठक-सी जाती है। शशिगुप्त भी उसे एकटक देखने लगता है। चाणक्य इन दोनों की इस मुद्रा को ध्यानपूर्वक देखता है। आसंदी पर बैठने के पश्चात् हेलन चारों ओर कौतूहल से देखती है। उसकी दृष्टि चाणक्य पर पड़ती है। उसे देख वह एक विचित्र ढंग से मुस्कराती है। चाणक्य उसे घूरता है। उसे इस प्रकार देखते हुए देखकर वह जल्दी से उस ओर से दृष्टि हटा लेती है। आम्भीक, सिल्यूकस, पिथान तथा यूनानियों को दाहनी ओर की शेष आसंदियों पर बैठाता है। फिर आम्भीक और उसका मंत्री अपनी अपनी आसंदियों पर बैठते हैं। शेष सभासद भी अपने अपने

स्थानों पर बैठ जाते हैं। बाँयें द्वार से नर्तकियों का एक समूह निकलता है। सभी युवतियाँ हैं; सबका वर्ण गौर है और सभी सुन्दर हैं। इनकी वेषभूषा वाहिकाओं के सदृश है; अन्तर इतना ही है कि इनके अधोवस्त्र घेरदार हैं। ये नर्तकियाँ भारतीय 'काम-नृत्य' करती हैं। नृत्य पूर्ण होने पर नर्तकियाँ बाँयें द्वार से जाती हैं और आमीक धीरे-धीरे व्यास पीठ पर आकर बैठता है।]

आंमीक—यूनान सम्राट, राजराजेश्वर, विश्व-विजेता अलक्षेन्द्र, अश्वकाधिपति शशिगुप्त कुलपुत्रो, सामन्त गण और सभासदो! आज का दिवस भारतीय इतिहास में ही नहीं किन्तु संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा। इसके कारण हैं। कोई घटना किसी ग्राम, कोई किसी नगर, कोई किसी प्रान्त और कोई किसी देश के लिए महत्त्व की होती है, परन्तु संसार में ऐसी घटनाएँ बहुत कम हुई हैं, तथा होती हैं, जिनका विश्व व्यापी स्थान हो। विश्वव्यापी महत्त्व की घटनाएँ वे ही व्यक्ति घटित करते हैं, जो किसी ग्राम, किसी नगर, किसी प्रान्त, किसी देश के नहीं, किन्तु समस्त विश्व के कल्याण के निमित्त अवतीर्ण होते हैं। हमारे आर्य धर्म्म में वे भगवान के अवतार माने जाते हैं। इस समय यह अवतार यूनान में हुआ है और यह हमारे देश का सौभाग्य है कि आज आर्यावर्त उस अवतार की चरण-रज से पवित्र हो रहा है। हमारे देश निवासियों के जन्म जन्मान्तरों के पुण्यों का उदय हुआ है कि उन्हें आज उस महान विभूति के पवित्र दर्शन प्राप्त हो रहे हैं।

[सभा में उपस्थित जन समुदाय एक टक सिकन्दर की ओर देखकर मस्तक नवाता है। महाप्रतिहार शंख ध्वनि करता है।]

आंमीक—हमारे मित्र अश्वकों के अधिपति शशिगुप्त ने उनके मार्ग अवरोध करने का महा पातक किया था, परन्तु भगवान ने शशिगुप्त को सुबुद्धि दी। उन्होंने अपने पाप का प्रायश्चित करने के निमित्त राजराजेश्वर की शरण ले ली है और सर्व साधारण को यह जानकर हर्ष होगा कि शरणागत-वत्सल सम्राट ने शरणागत का अपराध क्षमा कर उन्हें आनर्त दुर्ग का अधीश्वर नियुक्त किया है।

[सभा जन एक टक शशिगुप्त की ओर देखकर मस्तक झुकाते हैं। शशि

का मुख और अधिक ग्लानि से म्लान हो जाता है। वह कठिनाई से रूक्ष ओष्ठों को गीला करने का प्रयत्न करता है। महाप्रतिहार पुन. शख-ध्वनि करता है।]

आंभीक—यह तुच्छजन इस महापुरुष के इस शुभागमन में एक निमित्त हुआ है, अतः यह अपने को, अपने पूर्वजों को, अपने कुल को और अपने देश को सौभाग्य शाली मानता है।

[आमीक व्यास पीठ पर से उठ धीरे धीरे सिकन्दर के सिंहासन की ओर आता है। सभासद एकटक आमीक की ओर देखते हैं। महाप्रतिहार फिर शंख बजाता है। आमीक सिकन्दर के सिंहासन के सामने आ अपना खड्ग निकाल उसे मस्तक तक ले जा सिकन्दर का अभिवादन करता है। सिकन्दर सिर झुका अभिवादन का उत्तर देता है। आमीक अपनी आसंदी पर बैठता है। उसके पश्चात् शशिगुप्त उठता है। उसका शरीर काँप सा जाता है, और वह पुन॰ अपनी आसंदी पर बैठने लगता है, परन्तु इतने में ही उसकी दृष्टि चाणक्य पर पडती है। चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता है। शशिगुप्त आसदी पर बैठते बैठते रुक जाता है। और धीरे धीरे सिकन्दर के सम्मुख आकर आमीक के सदृश ही खड्ग निकाल उसे सिर तक ले जा सिकन्दर का अभिवादन करता है। सिकन्दर मुस्करा कर थोडा अधिक सिर झुका इस अभिवादन का उत्तर देता है। शशिगुप्त लौटकर अपनी आसंदी पर बैठता है। उसके बैठने के ढंग से जान पडता है कि वह इतना थक गया है मानों उसने योजनों की यात्रा की हो। उसकी मुद्रा में अत्यधिक ग्लानि और मलिनता दृष्टिगोचर होती है। सिकन्दर सिंहासन से उठ व्यास पीठ पर बैठता है। सभा में उपस्थित जन समुदाय एकटक सिकन्दर की ओर देखता है। महाप्रतिहार शंख ध्वनि करता है।]

सिकन्दर—राजा आमीक, राजा शशिगुप्त, कुलपुत्र, सामन्तगण और सभासदो! आपके इस प्राचीन देश में आकर मुझे असीम हर्ष हुआ है। मेरा आगमन ससार के दो प्राचीनतम देशों—पश्चिम के यूनान और पूर्व के भारत के सम्मिलन का आरंभ है। सृष्टि की सर्व श्रेष्ठ उत्पत्ति मानव-समाज ने इन्हीं दो देशों में सभ्यता तथा संस्कृति की चरम सीमा तक उन्नति की और अब सम्मिलन के पश्चात् जो कुछ होगा उसकी तो आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। भगवान कदाचित मेरे हाथों इस महान कार्य को सपन्न

कराना चाहते हैं। मेरे साथ सहयोग कर आपके राजा आभीक ने विश्व के इतिहास में अपना नाम अजर अमर कर लिया है।

[समासद एकटक आभीक की ओर देखते हैं, जो अत्यन्त विनम्र हो अपना मस्तक झुकाता है। महाप्रतिहार शंख बजाता है।]

सिकन्दर—(मुस्करा कर) अश्वकों के अधिपति शशिगुप्त ने भी अपनी भूल को शीघ्र ही सुधार लिया है और अब उन्होंने भी मेरे साथ सहयोग करने का वचन दिया है।

[समाजन शशिगुप्त की ओर देखते हैं, जो एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए चाणक्य की ओर देखने लगता है। महाप्रतिहार शंख ध्वनि करता है।]

सिकन्दर—आपके देश के अनेक विराज्य गणतंत्रों के गणमुख्यों और गणराजों ने भी मुझे सहयोग देने के लिए पत्र लिखे हैं।

[समासद एकटक सिकन्दर की ओर देखते हैं। महाप्रतिहार शंख बजाता है।]

सिकन्दर—मैंने यहाँ के अन्य नरपतियों को भी पत्र लिखे थे और मुझे यह कहते हुए अत्यन्त खेद होता है कि उनमें से एक पचनद-नरेश ने मुझे अत्यन्त अपमान जनक उत्तर भेजा है।

एक सभासद—धिक्कार है! धिक्कार है!

अधिकांश सभासद—धिक्कार है! धिक्कार है!

[शशिगुप्त का हाथ आप से आप एकाएक अपने खड्ग की मूठ पर जाता है, पर उसी समय उसकी दृष्टि फिर चाणक्य पर पड़ती है। चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता है। शशिगुप्त एक दीर्घ निश्वास लेकर हाथ को खड्ग की मूठ पर से हटा लेता है।]

सिकन्दर—पंचनद-नरेश के सम्बन्ध में आपकी सम्मति जानकर मुझे परम सन्तोष हुआ है। आप लोग इस विषय में चिन्तित न हों। मेरे अनुष्ठान में किसी की बाधा चल सके, यह हो ही नहीं सकता। जो काम ईश्वरीय जन द्वारा भगवान की प्रेरणा से होता है उसमें मनुष्य बाधा पहुँचाने की शक्ति ही नहीं रखता। संसार में कोई भी मेरे मार्ग का रोड़ा न हो सका। राजा पर्वतक तो क्षुद्र जीव है। वह शीघ्र ही अपने किये का फल पायेगा। उसके राज्य पर अविलंब आक्रमण होगा।

[महाप्रतिहार शंख ध्वनि करता है।]

सिकन्दर—आपके और हमारे सहयोग का जो यह आरंभ हो रहा है, इसके उपलक्ष में कल हमारी देवी एथेना का महा पूजन होगा। उस उत्सव में बलिदान, घुड़दौड़, मल्ल युद्ध आदि का निरीक्षण करने को आप सभी आवें।

[सिकन्दर व्यास पीठ पर से उठ सिंहासन की ओर बढ़ता है। सभा में जय-जयकार होता है। महाप्रतिहार शंख ध्वनि करता है।]

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

स्थान—तक्षशिला दुर्ग के कक्ष की एक दालान

समय—सन्ध्या

[दालान की भित्ति रंगी हुई है। दालान में कोई द्वार इत्यादि नहीं है। दोनों ओर कुंभी और भरणी से युक्त दो स्तंभ हैं। हेलन का गाते हुए प्रवेश। उसके मुख पर अत्यधिक प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है। वह गाती हुई इधर उधर टहलती है।]

गान

रे मन ! आँसू पीले।
निभृत नींद से जाग, निरन्तर नयन नीर से गीले।
शैशव शैय्या पर सोया था सुख से रे! अनजान
किस निर्दय अँगुली ने छेड़ी खिंची बीन पर तान।
निकले राग रसीले।
चौंक चकित सा उड़ उड़ मत छू रे! बादल के कूल।
उच्छ्वासों की आँधी चलती पन्थ न जाना भूल।
रुक जा हाय! हठीले।
आतुर आशा खोल झाँकती सुख सुषमा के द्वार।
बन्दी का जीवन रे भोले! हो जावेगा भार।
हो निराश ही जीले।

[गान पूर्ण होने पर सिल्यूकस का प्रवेश।]

सिल्यूकस—यह नयी कविता है, बेटी !

हेलन—(चौंककर) ओ ! आप छिपकर मेरा गाना सुन रहे थे ?

सिल्यूकस—छिपकर ! क्यों, अनेक बार तेरा गाना नहीं सुनता ?

हेलन · कहिए, कैसी कविता थी ?

सिल्यूकस—अच्छी तो थी। (कुछ रुककर) बेटी, विवाह के पूर्व तेरी माँ ने भी कुछ ऐसी ही कविताएँ लिखी थीं।

हेलन—(कुछ विचारते हुए) मेरी माँ ने विवाह के पूर्व ऐसी ही काव्य रचना की थी ?

सिल्यूकस—हाँ !

हेलन—(और भी विचार करते हुए) तो क्या लोग विवाह के पूर्व ऐसी कविताएँ करते हैं ?

सिल्यूकस—सो तो मैं नहीं जानता, किन्तु तेरी माँ ने इस प्रकार का काव्य विवाह के पूर्व अवश्य लिखा था।

हेलन—(उसी प्रकार सोचते हुए) पिताजी, आप ठीक कहते हैं, लोग विवाह के पूर्व ही ऐसी कविता करते हैं।

सिल्यूकस—(मुस्कराकर) अच्छा, तो क्या तू विवाह करने जा रही है ?

हेलन—हाँ, मैं आपसे कहने वाली थी। मैंने अपने विवाह न करने के पुराने निश्चय को बदल दिया है।

सिल्यूकस—(मुस्कराते हुये) बड़े हर्ष की बात है।

हेलन—और यह सुनकर कि किससे विवाह करने का निश्चय किया है, आपको हर्ष के स्थान पर कदाचित आश्चर्य होगा।

सिल्यूकस—अच्छा !

हेलन—पिताजी, मैं एक भारतीय से विवाह करूँगी।

सिल्यूकस—(हँसते हुए) राजा आभीक से, उन्हीं का तेरे पास इतना आवागमन है ?

हेलन—छि. छिः ! आपकी कन्या क्या इतनी पतित है ? पिताजी मुझमें परख करने की क्षमता है। भगवान ने मुझे सुरुचि दी है। मैं शशिगुप्त से विवाह करूँगी।

सिल्यूकस—(गंभीरता से) हूँ !

हेलन—(सिल्यूकस की ओर देखते हुए) आप तो बड़े गंभीर हो गये, पिताजी। आप ही तो मुझसे कहा करते थे कि मैं विवाह योग्य हुई; अपने लिए कोई सुयोग्य वर पसन्द करूँ। पिताजी, शशिगुप्त क्या सचमुच शशि जैसा नहीं है, उससे अच्छा कभी, कहीं भी, कोई पुरुष आपने देखा ? कहिए, मेरी परख कैसी है ?

सिल्यूकस—बेटी, तू अभी बच्ची ही है।

हेलन—बच्ची हूँ ! तो आप मुझे सुयोग्य वर पसंद करने के लिए क्यों कहा करते थे ?

सिल्यूकस—सो अभी भी कहता हूँ, परन्तु यवनों में से, बेटी।

हेलन—(कुछ सोचते हुए) यवनों में से ? परन्तु यवनों में तो मुझे शशिगुप्त के सदृश कोई दिखता ही नहीं। (कुछ रुककर) शशिगुप्त के अतिरिक्त आज पर्यन्त मुझे कोई इस प्रकार आकर्षित ही न कर सका ?

सिल्यूकस—मैंने कहा न, तू अभी भी बच्ची है।

हेलन—जब मैंने विवाह न करने का निर्णय किया था, तब भी आप कहते थे बच्ची हूँ। जब सुयोग्य वर ढूढ कर विवाह करने को कह रही हूँ, तब भी आप कहते हैं बच्ची हूँ। यह भी कोई बात है ! पिताजी, मैं शशिगुप्त से ही विवाह करूँगी।

सिल्यूकस—तू तो बड़ी देश भक्त थी।

हेलन—अभी भी हूँ।

सिल्यूकस—(दृढ़ता से) देशभक्त, देशद्रोही से विवाह नहीं कर सकता।

[हेलन की सारी प्रसन्नता एकाएक चली जाती है। उसका मुख एकदम उदास हो जाता है और वह सिर नीचा कर लेती है। सिल्यूकस एकटक उसकी ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

हेलन—(धीरे धीरे सिर उठाते हुए, भर्राये स्वर में) आप ठीक कहते हैं, पिताजी, देशभक्त देशद्रोही से विवाह नहीं कर सकता। स्वर्ग और नरक का सम्बन्ध नहीं हो सकता। पूर्णिमा और अमा में प्रेम संभव नहीं। दिन और रात का संबन्ध कैसा ? मैं देशभक्त, शशिगुप्त देशद्रोही। आकाश और पाताल

कैसे मिल सकते हैं ? आपने ठीक कहा, पिता जी, मैं बच्ची हूँ। मेरी रुचि अभी परिष्कृत नहीं हुई। मुझ में परख करने की क्षमता नहीं। (घृणा से) शशिगुप्त प्रेम का पात्र नहीं घृणा की वस्तु है। शशि......

[आंभीक का गोद में एक मोर लिये हुए प्रवेश।]

हेलन—(मोर को देखकर आश्चर्य से) हैं ! यह क्या है ?

आंभीक—मयूर, कुमारी।

[आंभीक मोर को छोड़ देता है। वह इधर उधर घूमने लगता है।]

हेलन—(मोर को देखते हुए) यह पक्षी है ?

आंभीक—हाँ, कुमारी।

सिल्यूकस—अच्छा, तो मैं सम्राट के पास जाता हूँ। भोजन के समय मिलूंगा। (प्रस्थान।)

हेलन—(सिल्यूकस की बात पर बिना कोई ध्यान दिये, मोर को देखते हुए) यह तो बड़ा विचित्र विहंग है !

आंभीक—बड़ा सुन्दर है न, कुमारी ?

हेलन—(मोर की ओर ही देखते हुए) अत्यन्त सुन्दर। मैंने जीवन में कभी इतना सुन्दर पक्षी नहीं देखा।

आंभीक—यह आपकी भेंट के लिए लाया हूँ, कुमारी।

हेलन—(प्रसन्नता से) इसे आप मेरे लिए लाये हैं !

आंभीक—हाँ, कुमारी।

हेलन—आपकी बड़ी कृपा।

[हेलन उसे पकड़ना चाहती है, पर वह इधर उधर दौड़ता है। हेलन उसके पीछे दौड़ती है। जब नहीं पकड़ पाती तब बीच बीच में खिल खिलाकर हँसती है। आंभीक भी हँसता है। अंत में आंभीक उसे पकड़ लेता है और हेलन को दे देता है। हेलन उसे गोद में लेकर बड़ी प्रसन्न होती है।]

हेलन—आपको कोटिशः धन्यवाद, राजा आंभीक।

आंभीक—(हेलन की ओर एकटक देखते हुए) दूसरी भेंट के पश्चात् भी केवल धन्यवाद, कुमारी ?

हेलन—(मोर की ओर देखते हुए, आमीक की मुद्रा और कथन पर बिना कोई ध्यान दिये) और कुछ चाहिए, राजन् ?

आंभीक—यदि आपकी कृपा हो तो चाहिए तो बहुत कुछ कुमारी।

हेलन—(अब आमीक की ओर देखकर कुछ गंभीरता से) कहिए ?

आंभीक—(घुटने टेककर) मैं आपके प्रेम का भिक्षुक हूँ, कुमारी।

हेलन—(क्रोध से मोर को छोड़ते हुए) अब मैं समझी कि तू इस प्रकार मेरे चारों ओर क्यों घूमता है और मुझे नित नयी भेंटें क्यों देता है। निर्लज्ज, एक पवित्र और सुन्दर वस्तु लाँच में देकर अपवित्र और कलुषित इच्छा पूर्ण करने आया है ?

आंभीक—कदापि नहीं, कुमारी, मैं आपसे विवाह का प्रस्ताव करने आया हूँ, पवित्र प्रस्ताव करने। राजकुमारी लाँच धन की दी जाती है, पार्थिव वसुधा की दी जाती है ; यह तो पुनीत भेंट है ; और पवित्र प्रस्ताव भी रिक्त करों से नहीं किया जा सकता।

हेलन—(क्रोध से) चुप रह। पवित्रता की व्याख्या मैं एक देशद्रोही के मुख से नहीं सुनना चाहती। बावना है न, छोटी ही बात सोच। सम्राट् के पास जा, टेलेंट ले। अभी देश बेचा है, अब और कुछ बेच ; और ले जा अपनी इस भेंट को भी ; यह पुनीत वस्तु भी तेरे पातकी हाथों में अपवित्र हो गयी है।

[हेलन का शीघ्रता से प्रस्थान। आमीक हेलन की ओर देखता रह जाता है। मोर उड़ता है और आमीक भी सिर नीचा किये हुए धीरे धीरे जाता है।]

परदा उठता है

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—आरनस दुर्ग का एक कक्ष

समय—प्रातःकाल

[कक्ष बहुत बड़ा नहीं है। कक्ष की छत कुम्मी और मरणी से युक्त काष्ठ के स्तभों पर स्थित है, जिन पर खुदाव का काम है। तीन ओर मित्तियाँ हैं, जो आकाशी नील रंग से रंगी हैं। दाहिनी और बाँईं ओर की मित्तियों के सिरों पर

एक एक द्वार हैं। द्वार खुले हैं, जिनसे बाहर के वृक्षों के ऊपरी भाग और दूर दूर पर पर्वत श्रेणियाँ तथा आकाश दिखायी देता है। इससे जान पड़ता है कि कक्ष द्वितीय या तृतीय खण्ड पर है। बाहर का दृश्य सूर्य के आलोक से आलोकित है। यही प्रकाश कक्ष में भी आ रहा है। द्वारों की चौखटें और कपाट भी काष्ठ के हैं और इन पर भी खुदाव है। पीछे की दीवाल के बीचों बीच राम और कृष्ण के दो चित्र लगे हैं। राम धनुष और तरकश से सुसज्जित हैं और कृष्ण के हाथ में चक्र है। दाहिनी ओर की भित्ति पर पाँच चित्र हैं—दिलीप की गो सेवा, रघु का युद्ध, इन्दुमती का स्वयंवर, राम-रावण युद्ध और राम का राज्याभिषेक। बाई ओर की भित्ति पर भी पाँच चित्र हैं—एकलव्य का द्रोणाचार्य को अंगुष्ठ दान, द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन का मत्स्य वेध, भारत युद्ध में अर्जुन का मोह, भीष्म की शर शैया और पाडवों का स्वर्गारोहण। कक्ष की पृथ्वी पर हरित रंग की बिछावन बिछी है। उस पर कक्ष के बीचों बीच काष्ठ का खुदाव के काम से युक्त शयन (एक प्रकार का सोफा) रखा हुआ है। उस पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दी है और गद्दी पर तकिये। शयन के दोनों ओर दो दो काष्ठ की आसंदियाँ रखी हुई हैं। इन पर भी खुदाव है और इन पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियाँ बिछी हैं तथा तकिये लगे हैं। दो काष्ठ की ऊँची धूप दानियों के रजत पात्रों में धूप जल रही है। शशिगुप्त खडा हुआ पीछे की भित्ति पर के राम और कृष्ण के चित्र देख रहा है। वह केवल अधोवस्त्र पहने है। मस्तक पर मुकुट है नहीं किन्तु शरीर पर शेष आभूषण हैं। कमर में खड्ग भी है नहीं और पैर नंगे हैं। उसका आधा मुख दिख रहा है और उससे जान पडता है कि वह उद्विग्न है। कुछ देर के पश्चात् शशिगुप्त आकर शयन पर बैठता है। अब उसका पूरा मुख दृष्टिगोचर होता है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि उसकी उद्विग्नता बहुत बढ़ी हुई है। शयन पर बैठते ही वह एक दीर्घ निश्वास लेता है। फिर शून्य दृष्टि से सामने की ओर देखता है। कुछ ही देर में वह फिर उठता है और पहले दाहिनी ओर की भित्ति के और तदुपरान्त बाई ओर की भित्ति के चित्रों को घूम घूम कर देखता है। इन चित्रों को देखते हुए सब से अधिक वह ठहरता है इन्दुमती के स्वयंवर और एकलव्य के अंगुष्ठ दान के चित्रों के सम्मुख। घूमघाम कर वह पुनः शयन पर बैठ जाता है। फिर दीर्घ निश्वास लेता है और अपना मुख अपने दोनों हाथों पर रख नीचे की ओर देखने लगता है। चाणक्य का प्रवेश। उसकी वेष-भूषा सदा के समान है। ध्यान मग्न

शशिगुप्त को गुरु आगमन की आहट नहीं मिलती। चाणक्य ध्यान पूर्वक शशिगुप्त को देखते हुए उसके निकट आता है।]

चाणक्य—(निकट आकर) वत्स।

शशिगुप्त—(चौंक कर खड़े होते हुए) कौन ! (चाणक्य की ओर देखते हुए) गुरुदेव !

[दोनों शयन पर बैठ जाते हैं।]

चाणक्य—(मुस्कराते हुए) अभी भी चित्त शान्त नहीं हुआ ?

शशिगुप्त—क्या कहूँ, आर्य।

चाणक्य—उस दिन यदि मैं सभा-स्थल पर न होता तो तुम अनर्थ ही कर डालते।

शशिगुप्त—इसमें कोई संदेह नहीं।

चाणक्य—क्यों, वत्स, सभा में किस प्रकार की भावनाएँ हृदय में उठी थीं ?

शशिगुप्त—इतना ही कह सकता हूँ, गुरुदेव, कि जीवन में इस प्रकार के भाव उसके पहले कभी नहीं उठे।

चाणक्य—(मुस्कराकर) उस समय की तुम्हारे मस्तिष्क और हृदय की गति विधि को मैं ब्योरेवार जानना चाहता हूँ।

शशिगुप्त—जैसी आज्ञा, आर्य। (कुछ रुक कर) उस सभा भवन में प्रवेश करने के पूर्व ही मेरा हृदय उद्विग्न हो चला था।

चाणक्य—यह कहो न, कि अलक्षेन्द्र का क्षत्रप होने की स्वीकृति के पश्चात् ही इस उद्विग्नता का आरम्भ हो गया था।

शशिगुप्त—(कुछ सोचते हुए) आप ठीक कहते हैं, आर्य।

चाणक्य—अच्छा, सभा भवन में प्रवेश करने के पश्चात् का वृत्त कहो।

शशिगुप्त—सभा भवन में प्रवेश करते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानों मैं किसी महान पातक में सहयोग देने के निमित्त आया होऊँ।

चाणक्य—अच्छा।

शशिगुप्त—और, गुरुदेव, उस अधम कार्य को करने के लिए जिस

प्रकार की मंगलमय योजना की गयी थी, जिस भाँति सभा भवन अलकृत किया गया था. उसमें जिस प्रकार के पातकियों को बुलाया गया था, वह सब देखकर तो मेरा हृदय ग्लानि के साथ क्रोध से भी भर गया। (चुप होकर लम्बी साँस लेता है ।)

चाणक्य—अच्छा, आगे ।

शशिगुप्त—येन केन प्रकारेण आपकी ओर देख देखकर अपने हृदय को किसी प्रकार भी मसोसते हुए जब तक महाप्रतिहार ने अलक्षेन्द्र के आगमन की सूचना दी, मैं बैठा रहा, परन्तु जब महाप्रतिहार की शख-ध्वनि के साथ मैंने उसके शब्द 'जय यूनान सम्राट राज राजेश्वर, विश्व विजेता, अलक्षेन्द्र महाराज जय' सुने तब तो मेरा बैठे रहना भी कठिन हो गया। बार बार यदि आपकी ओर न देखता तो न जाने मैं वहाँ क्या कर डालता।

चाणक्य—अच्छा ।

शशिगुप्त—अलक्षेन्द्र को मैं ईरान और अश्वकों के उत्तरा पथ के युद्ध में भी कई बार देख चुका था, परन्तु उन अवसरों पर उसे देखकर मेरे हृदय में वैसी भावनाएँ न उठी थीं, जैसी उस सभा भवन में। (कुछ रुककर) आर्य, कदाचित् इसका एक कारण था।

चाणक्य—क्या ?

शशिगुप्त—पहले मैं उसे शत्रु की भावना से देखता था ; अपने को उसकी बराबरी का समझ उसे परास्त करने की इच्छा से देखता था ; परन्तु ...परन्तु, आर्य, उस दिन...उस दिन तो मैं उसे अपनी जन्म भूमि के अधिपति के रूप में, अपने सम्राट के रूप में, देखने गया था, अपने आपको उसके चरणों में समर्पित करने के लिए वहाँ उपस्थित हुआ था ; वह उच्च था, उच्चतम, मैं निम्न था, निम्नतम ।

[गला भर जाने के कारण शशिगुप्त चुप हो जाता है। चाणक्य एक टक उसकी ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—फिर ?

शशिगुप्त—देशद्रोही आम्भीक का भाषण सुन, उसका यह कथन श्रवण

कर कि वह दिवस केवल भारत ही नहीं, किन्तु संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा, अलक्षेन्द्र अवतार है एवं उसके पदार्पण से भारत भूमि पवित्र हुई है तथा हमारे जन समुदाय के जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य उदय होने के कारण हमें अलक्षेन्द्र के दर्शन हुए हैं, मैंने जिस प्रकार के महान आघात का अनुभव किया, वह मैं कह नहीं सकता, आर्य ! इस आयोजन में आभीक के निमित्त होने के कारण उसे अपने को, अपने कुल को और अपने देश को गौरवशाली मानने की उसकी गर्व-पूर्ण घोषणा को सुन मेरे हृदय को जो दशा हुई, उसका वर्णन भी मैं शब्दों में नहीं कर सकता। वह विदेशी, वह क्रूर, वह आततायी, राम और कृष्ण के सदृश अवतार! एक भारतीय का आभीक के सदृश पतन! क्या कहूं ! (फिर चुप हो जाता है।)

चाणक्य—अच्छा।

शशिगुप्त—जब आभीक ने अपने भाषण में मेरा नाम लिया, मुझे अलक्षेन्द्र का शरणागत बनाया. और जब उस सारी सभा ने एकटक मेरी ओर देखा, उस समय...उस समय, गुरुदेव, जैसी ग्लानि ..जैसी महान आत्म-ग्लानि का मैंने अनुभव किया, वैसा अनुभव जीवन में उसके पूर्व कभी न हुआ था। (वह दीर्घ निश्वास ले फिर चुप हो जाता है।)

चाणक्य—आगे बढ़ो।

शशिगुप्त—अलक्षेन्द्र का भाषण मुझे उतना असह्य प्रतीत न हुआ जितना आभीक का। परन्तु पंचनद-नरेश देशभक्त पर्वतक के नाम पर जब सभा में 'धिक्कार है, धिक्कार है' शब्द हुए तब तो मैं आपे में न रह सका और आपने यदि उतनी क्रूर दृष्टि से मुझे न देखा होता तो मैं अपने खड्ग से उस सारी सभा का संहार कर डालता।

चाणक्य—वह भयानक भूल होती वत्स।

[शशिगुप्त चुप रहता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—अच्छा आगे।

शशिगुप्त—सबसे अधिक ग्लानि मुझे तब आयी जब आभीक के पश्चात् मुझे अलक्षेन्द्र का अभिवादन करने उठना पड़ा। आर्य, उस समय कदाचित्

मैं पूर्ण चेतना में न था। जान पड़ता था, मेरे रुधिर का प्रवाह ही रुक गया है। आपने यदि अपनी प्रखर दृष्टि मुझ पर डाल मुझ में पुनः रक्त संचार न किया होता तो संभव है मैं मूर्छित होकर गिर पड़ता।

चाणक्य—हाँ, तुम्हें उस समय देखकर मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता था।

शशिगुप्त—(कुछ रुककर) जब खड्ग निकाल कर मैंने अलक्षेन्द्र का अभिवादन किया उस समय मेरी इच्छा हुई कि उसी खड्ग से मैं अपना सिर काटकर उस सिर को उस अभिवादन में अलक्षेन्द्र की भेंट कर दूं। (कुछ रुककर) गुरुदेव, उस नत मस्तक को पुनः उठाकर चलने में मुझे जैसी लज्जा का अनुभव हुआ वैसी लज्जा उसके पहले कभी न आयी थी, परन्तु ..परन्तु .. आर्य आप...आप उपस्थित थे। आप पर फिर मेरी दृष्टि पड़ गयी, आपको दिया हुआ वचन स्मरण आ गया।

चाणक्य—और जब तुम लौट कर अपने स्थान पर बैठे उस समय तुम बहुत थके हुए दिखते थे।

शशिगुप्त—थका हुआ! आर्य, वैसी थकावट उसके पूर्व मुझे कभी हुई ही न थी। घोड़े की पीठ पर लगातार सप्ताहों तक बैठने पर भी, खड्ग का युद्ध में पक्षों तक उपयोग करते रहने पर भी, कभी भी, आर्य, मैं उतना न थका था, जितना अलक्षेन्द्र को अभिवादन करने में थक गया था।

[शशिगुप्त एक दीर्घ निश्वास लेकर सिर झुका लेता है। चाणक्य सामने की ओर देखने लगता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—तुमने अपनी सारी भावनाओं का, अपने मस्तिष्क और हृदय की गति विधि का ठीक ठीक वर्णन कर दिया; परन्तु, वत्स, तुमने इस वर्णन में एक वृत्त छोड़ दिया है।

शशिगुप्त—(सिर उठा कर) कौन सा, आर्य?

चाणक्य—सिल्यूकस की कन्या हेलन को देखने के समय तुम्हारे हृदय में कैसी भावनाएँ उठी थीं?

[शशिगुप्त का मुख लाल हो जाता है। वह कोई उत्तर नहीं देता और चाणक्य की ओर देखने लगता है। चाणक्य भी उसकी ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—उन भावनाओं को मुझे बताने में तुम्हें संकोच होता है ?

शशिगुप्त—(मुख नीचा कर) संकोच...सकोच, गुरुदेव !

[शशिगुप्त फिर चुप हो जाता है। उसका मुख नीचे की ओर झुका रहता है। चाणक्य उसकी ओर देखता रहता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—मैं तुम्हारे हर भाव को जानता हूँ। मैं तुम्हारा सच्चा गुरु हूँ, वत्स ! हेलन के प्रति जिस प्रेम का तुम्हारे हृदय में प्रादुर्भाव हुआ है, वह मुझसे छिपा नहीं है। परन्तु ..परन्तु, वत्स ..(रुक जाता है।)

शशिगुप्त—(चाणक्य की ओर देखते हुए) आर्य !

चाणक्य—तुम्हें इस प्रेम की देश की स्वतत्रता के यज्ञ में आहुति देनी होगी। इस यज्ञ में दीक्षित, इस महान अनुष्ठान का संकल्प लेने के पश्चात्, तुम यवनों को प्रेम की दृष्टि से देख ही नहीं सकते। प्रत्येक यवन तुम्हारे लिए घृणा की वस्तु है। जितनी तुम अलक्षेन्द्र से घृणा करते हो उतनी ही हरेक यवन से करो ; हेलन से भी ; उसे तो विष-कन्या मानो। उसके पिता सिल्यूकस को भी घृणित समझो। अलक्षेन्द्र हमारे देश के लिए जितना बड़ा भय है, सिल्यूकस और उसके सभी साथी उससे कम नहीं। अवसर पाकर तुम्हें एक एक यवन का वध करना है। अपनी जन्म-भूमि के परतंत्र भागों को फिर स्वतंत्र बनाना है। अपने देश में एक साम्राज्य की स्थापना करना है। अपनी प्रतिज्ञा, अपने सकल्प पर स्थिर रहना यह प्रत्येक आर्य का परम कर्त्तव्य है, प्रधान धर्म है। क्या शशिगुप्त उससे कभी विचलित हो सकता है ?

शशिगुप्त—(भर्राये हुए स्वर में) क्या आपको...आपको भी सन्देह है। गुरुदेव।

[दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं।]

यवनिका

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र नगर में राजा नंद का प्रमोदोद्यान

समय—सन्ध्या

[विशाल और सुन्दर उद्यान है। दूर पीछे की ओर उद्यान का कोट दिखता है, जो हरी लताओं से ढका हुआ है। कोट के ऊपर आकाश मण्डल दिखायी देता है, जो बादलों से अच्छादित है। इन बादलों में कभी कभी बिजली चमक जाती है। कोट के सामने, उससे कुछ कम दूरी पर, ऊँचे ऊँचे वृक्ष दिख पड़ते है। इन वृक्षों के सामने, उनसे कुछ कम दूरी पर, पुष्पों की क्यारियाँ हैं, जिनमें भाँति-भाँति के पुष्प खिले हुए हैं। इन क्यारियों के बीच में चौड़ा चौक है, जो संगमरमर से पटा है। इस चौक के बीचों बीच काष्ठ के बहुत ऊँचे स्तंभों पर एक आड़ी मोटी लकड़ी है। इसमें हिंडोला पड़ा है। स्तंभों, स्तंभों के ऊपर की लकड़ी और हिंडोले की रस्सियों पर घने पत्र पुष्प बाँधे गये हैं। हिंडोले पर सुनहरे काम की गद्दी बिछी है, और उस पर उसी प्रकार के तकिये लगे हैं। नद झूल रहा है। नंद की अवस्था लगभग तीस वर्ष की है। उसका वर्ण गेहुँआँ है। न वह बहुत ऊँचा है और न ठिगना, न बहुत दुबला है न मोटा, न सुन्दर ही है और न कुरूप। सिर के लम्बे केश और छोटी छोटी मूछों के बाल काले हैं। वह नील कौशेय वस्त्र का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है। इन वस्त्रों पर सुनहरी काम है। रत्न जटित कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाओं से उसके अंग सुशोभित हैं। हिंडोला सब ओर से नर्तकियों से घिरा हुआ है। सभी नर्तकियाँ युवती हैं। उनका वर्ण गोरा है और वे सुन्दर हैं। उनकी वेष भूषा आमीक की सभा की नर्तकियों के सदृश ही है, अन्तर इतना ही है कि इनके आभूषण उनसे कहीं अधिक बहुमूल्य है। कुछ नंद को स्वर्ण के रत्न-जटित पात्रों में मदिरा पिला रहीं है। कुछ सुवर्ण के रत्न जटित थालों में उसके लिए तांबूल लिये खड़ी हैं। कुछ उसे झूला झुला रही हैं। कई गा रही हैं और कई भिन्न भिन्न प्रकार के वाद्य बजा रही हैं। नंद उन्मत्तों की भाँति कभी किसी नर्तकी को खींच और कभी किसी को पकड़ अपने साथ झुलाने लगता है।]

गान

सखि! डालों में पड़े हिंडोले।
घन की सित श्यामल छाया में मन भूला सा डोले।
उर का परिमल ढाँके जल थल उड़ समीर में छाये,
लहर लहर पर सिहर सिहर कर 'पीउ कहाँ' स्वर आये।

सजल श्याम घन रिम झिम सावन भीग भीग मन जाये,
नयन किनारे डूबे तारे उमड़े जल लहराये।
घन अवगुण्ठन खोले क्षण क्षण चपला हँस सकुचाये,
तन्द्रिल जीवन स्वप्निल लोचन कुछ खोजे कुछ पाये।
छाँह धूप खिल नीलिम सित मिल बुनते झिल मिल जाली,
तम छोरो पर द्युति डोरों पर झूले स्मृति मतवाली।
भावो के रँग श्वासों के सँग बादल पर चढ़ जायें,
जीवन से सिच प्रिय कर से खिच इन्द्र धनुष बन आयें।
बकुला वलि खिल अलि से हिल मिल मन की बात सुनाये,
गूँजे वञ्जुल कुञ्ज सुमञ्जुल मृदुल समीरण गाये।
कतकि मीलित कण्टक कीलित भौंरा पास न आये,
विकसित डाली, सखि! शेफाली मन में हँस इठलाये।
बरसे सावन घुल घुल मृदु तन स्नेह पात्र भर जाये,
उर का निर्झर उमड़े झर झर प्रिय का पथ सरसाये।

[राक्षस का प्रवेश। राक्षस की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है। उसका रंग गेहुआँ है। वह ऊँचा पूरा सुडौल शरीर और साधारणतया सुन्दर मुख वाला व्यक्ति है। शिखा और मूछों के बाल काले हैं। चौडी शिखा, ललाट के श्वेत चन्दन बिन्दु और मोटे यज्ञोपवीत के कारण वह ब्राह्मण दिखता है। वह श्वेत रंग का मोटा उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है। शरीर पर कोई आभूषण नहीं है। गान पूर्ण होने के कारण बन्द हो जाता है। दूसरे गान के लिये वाद्यों के सुर मिलाये जाते हैं।]

राक्षस—(नंद के निकट आकर) महाराज!

[नद राक्षस को ओर देखता ही नहीं और अपने विहार में सलग्न रहता है।]

राक्षस—(कुछ जोर से) महाराज! महाराज!

नंद—(उस ओर देखकर) कौन? (राक्षस को पहचान कर) मंत्रीजी।

राक्षस—बड़ी कठिनाई से श्रीमान् के दर्शन पा सका, सप्ताहों तक प्रयत्न करने के पश्चात्।

नंद—ह ह ह ह ह ह ह!

राक्षस—महाराज, बड़ी आवश्यक सूचना देनी थी। अलक्षेन्द्र सेना-सहित पर्वतक पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा है।

नंद—ह ह ह ह ह! (आकाश की ओर देखकर) इन्द्र सेना सहित पर्वत पर आक्रमण कर रहा है। ह ह ह ह ह!

कुछ नर्तकियाँ—हि हि हि हि हि हि हि।

राक्षस—नहीं, महाराज, नहीं, सिकन्दर...

नंद—दशकंदर! ह ह ह ह ह! त्रेता में हुआ था, त्रेता में...दशकंदर त्रेता में हुआ था न? ह ह ह ह ह!

एक नर्तकी—हाँ, त्रेता युग में हुआ था।

नंद—ह ह ह ह ह ह ह!

कुछ नर्तकियाँ—हि हि हि हि हि हि हि!

राक्षस—महाराज, यूनान सम्राट...

नंद—स्नान सम्राट! स्नान का यह समय है? सम्राट स्नान करते हैं प्रभात में...प्रभात मे। ह ह ह ह ह!

नर्तकियाँ—हि हि हि हि हि हि हि!

राक्षस—(दुख से) महाराज, महाराज, आप कदाचित् पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हैं। महाराज, चेतिए, चेतिए, अभी भी समय है...

नंद—हिंडोलोत्सव का? ह ह ह ह ह! अभी? अभी तो बहुत समय है। ह ह ह ह ह! अभी तो हिंडोलोत्सव का एक मास तक समय है। ह ह ह ह ह! (जोर से) गाओ, नर्तकियो! गाओ, (वाद्य आरंभ होता है) लाओ, नर्तकियो! लाओ।

[दो नर्तकियाँ सुरा और सुरापात्र लेकर आगे आती हैं। नद सुरापान करता है। राक्षस अत्यन्त दु खित मुद्रा से चारों ओर देखता है। गान आरम्भ होता है।]

परदा गिरता है

दूसरा दृश्य

स्थान—राजा पर्वतक की राजधानी का एक मार्ग

समय—तीसरा पहर

[बीच में मार्ग है। मार्ग के उभय ओर ऊँचे ऊँचे गृह बने हैं। कुछ पुरवासियों का प्रवेश। सभी का वर्ण गौर है। अधिकांश व्यक्ति ऊँचे पूरे शरीर के हैं। अवस्था में कोई वृद्ध कोई अधेड़ और कोई युवक हैं। सभी दुकूल वस्त्र के उत्तरीय और कौशेय वस्त्र के अधोवस्त्र धारण किये हैं। सब के वस्त्रों का रंग भिन्न भिन्न है। अधिकांश व्यक्ति कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ धारण किये हैं। सभी के आभूषण स्वर्ण के हैं, किसी किसी के रत्न जटित भी।]

एक पुरवासी—तुमने उसे निकट से देखा ?

दूसरा—बहुत निकट से।

पहला—और तुम निश्चय पूर्वक कह सकते हो कि उसके दो ही भुजाएँ हैं ?

दूसरा—निश्चय पूर्वक।

तीसरा—तब वह अवतार कैसे हो सकता है ?

चौथा—हाँ, अवतार के तो चार भुजाएँ होनी ही चाहिए।

पाँचवाँ—अवतार के चार भुजाएँ होना क्या अनिवार्य है ?

चौथा—अवश्य। राम, कृष्ण सभी अवतारों के चार भुजाएँ थीं।

पाँचवाँ—पर, भाई, यदि यह भी मान लिया जाय कि राम कृष्ण के चार भुजाएँ थीं तो वे देवताओं के अवतार थे। भारतवर्ष में सुरों के अवतार होते हैं, पर यूनान में असुरों के, और उनके दो ही भुजाएँ होती हैं। साथ ही वे सुरों के अवतारों के सदृश दयालु नहीं होते, क्रूर होते हैं; महान क्रूर। मैंने सुना है कि अलक्षेन्द्र यूनान के असुर ज्यूस का पुत्र है।

छठवाँ—हमारे महाराज ने सोच समझ कर ही उससे युद्ध ठाना है।

सातवाँ—पर एक बात अवश्य है।

छठवाँ—क्या ?

सातवाँ—आज पर्यन्त वह कहीं हारा, यह नहीं सुना।

आठवाँ—हाँ, यूनान से लेकर पंचनद देश तक तो वह बराबर जीता।

नवाँ—परन्तु पचनद देश में अवश्य हार जायगा।

सातवाँ—और न हारा तो ?

दसवाँ—न हारा तब तो ऐसी आपत्ति आयगी जैसी इसके पहले कभी न आयी थी।

सातवाँ—अवश्य। ईरान मे उसने जो कुछ किया उसे सुना नहीं? वहाँ के अधिपति दारयुश को क्रूरता से मारा। उसके स्थान पर जो बेसस आया उसके नाक कान कटवा कर उसका भी कितनी क्रूरता से वध किया। वहाँ के सेनाध्यक्षों, सैनिकों, नागरिकों सभी का कैसा सहार हुआ ?

आठवाँ—ईरान ही क्यों, जिस जिस देश ने उसका सामना किया सभी की यही दशा हुई। मिश्र, बैबीलोन, सुसा हर एक नष्ट हुआ।

सातवाँ—हाँ, और सब पर अमानुषिक अत्याचार हुए, अमानुषिक। केवल राज्याधिकारों पर नहीं, परन्तु समुदाय पर भी।

दसवाँ—हाँ, सहस्रों निर्दोषों को मार मार कर वृक्षों पर टाँगा गया। नगर के नगर जला कर भस्म कर दिये गये। गाँव के गाँव उजाड़ डाले गये।

सातवाँ—स्त्रियों और बच्चों तक को न छोड़ा। सहस्रों दास बना बना कर बेचे गये।

नवाँ—परन्तु पंचनद देश में वह हारेगा, अवश्य हारेगा।

सातवाँ—यह तुम कैसे कह सकते हो ?

नवाँ—यवनों के पास अश्वारोही हैं। अब तक उनका सामना या तो पदातियों ने किया है, या अश्वारोहियों ने। गज-सेना से उनको कभी भी युद्ध नहीं करना पड़ा।

छठवाँ—यह तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो। हमारे महाराज ने सोच समझ कर ही उससे युद्ध ठाना है।

नवाँ—जब हमारे रण-प्रवीण हाथी अपने पैरों से यवन अश्वारोहियों को रोंदेंगे, जब हमारे युद्ध मे दक्ष गज यवन पदातियों को अपनी शुण्डों से

पकड़ पकड़, उन्हें उछाल उछाल कर पृथ्वी पर पछाड़ेंगे, जब हमारे समर कुशल सारग यवन योद्धाओं के एक पैर को अपने एक पैर से दबा और दूसरे पैर को अपनी सूँड़ से उठा उन्हें चीर चीर कर फेंकेंगे, जब हमारे मदोन्मत्त मातंग यवन सैनिकों को अपनी शुण्ड से उठा उठाकर अपने ऊपर बैठे हुए पराक्रमी गजारोहियों को भेंट में देवेंगे और वे उनके सिरों को काट काट कर उनके सिरों की आहुति रण चडी को यज्ञ वेदी में चढावेंगे, तब तब ..

छठवाँ—हाँ, तब ये यवन ऐसे भागेंगे जैसे झंझावात में शुष्क पर्ण।

सातवाँ—परन्तु, भाई, अब शत्रु सेना में भी गज और गजारोही हैं।

नवाँ—तक्षशिला के मुट्ठी भर हाथी ही न ? अरे ! उनमें क्या रखा है ? एक तो उनकी सख्या ही कितनी, दूसरे हमारी गज-सेना के सामने तक्षशिला की गज-सेना ?

सातवाँ—जो कुछ हो, युद्ध के संबन्ध में कभी भविष्य-वाणी नहीं की जा सकती।

आठवाँ—हाँ, अच्छा होता यदि पंचनद-नरेश भी तक्षशिला के अधिपति के सदृश अलक्षेन्द्र से सन्धि कर लेते।

ग्यारहवाँ–सन्धि कर लेते ? आँभीक ने सन्धि नहीं की, देश को वेचा है।

आठवाँ—बेचा है ? कदापि नहीं। भगवान बुद्ध के अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार देश निवासियों और विदेशियों के रक्तपात को रोका है।

ग्यारहवाँ—भगवान बुद्ध के अहिंसा के सिद्धान्तों का यह दुरुपयोग है। अपनी कायरता को छिपाने के लिए भगवान बुद्ध की आड़।

छठवाँ - और पचनद-नरेश ने यदि आँभीक के सदृश देश-द्रोह किया होता तो पंचनद देश की प्रजा विद्रोह कर अलक्षेन्द्र से युद्ध करती।

ग्यारहवाँ—परन्तु पंचनद-नरेश के लिए इस प्रकार का देश-द्रोह करना ही असभव था।

छठवाँ—बन्धुओ, हमारी विजय होगी, निश्चित विजय होगी।

ग्यारहवाँ—न्याय-पक्ष भी तो हमारा ही है। हम उनके देश पर आक्रमण करने नहीं गये हैं, उन्होंने हमारे देश पर आक्रमण किया है।

छठवाँ—हमारे महाराज ने सोच समझकर ही उससे युद्ध ठाना है।

ग्यारहवाँ—सर्वथा सोच समझ कर।

[नेपथ्य में गान की ध्वनि सुन पडती है। पुरवासी ध्यान से सुनते हैं।]

गान

यही धर्म है यह संयम।
जन्म भूमि पर तन मन वारें वीरो का है एक नियम।
रोम रोम मे रमे धूलि कण,
उछ्वासो में पवनान्दोलन,
अन्न नीर से पुष्ट हुआ तन,
मत हो, हे मानव ! निर्मम।

यही धर्म०

[गाते हुए वीरभद्र का प्रवेश। वीरभद्र की अवस्था लगभग साठ वर्ष की है। वह गौर वर्ण का ऊँचा पूरा गठे हुए शरीर का व्यक्ति है। सिर के लम्बे बाल तथा बडी बडी मूछे और लम्बी दाढी एव भवें सब श्वेत हो गये हैं। शरीर पर की रोमावली भी श्वेत हो गयी है। अंग पर कौपीन के सिवा और कोई वस्त्र नहीं है। मस्तक और भुजाओं पर भस्म लगी है और मस्तक की भस्म के बीच में सिंदुर का एक बडा बिन्दु। दाहिने हाथ में लोहे का ऊँचा त्रिशूल लिये है। गान आगे बढाता है।]

गान

कर देते धन रत्न समर्पण,
रात्रि दिवस के एक एक क्षण,
स्वतन्त्रता पर प्रियतम जीवन,
नही मान प्राणो से कम।

यही धर्म०

जब हो जाता अतिशय मर्दन,
वज्र गिराता सजल मृदुल घन,

बरसो, वीरो ! बादल ही बन,
बह जावें रिपु कणकण सम ।

यही धर्म०

[उसके साथ कई पुरवासी गाने लगते हैं । कुछ देर पश्चात् वीरभद्र गाते गाते जाता है । पुरवासी गाते हुए उसके पीछे जाते हैं ।]

परदा उठता है

तीसरा दृश्य

स्थान—वितास्ता (झेलम) तट पर युद्ध क्षेत्र

समय—सन्ध्या

[विस्तृत मैदान है । बहुत दूर पर पीछे की ओर वितास्ता बहती हुई दिखती है । डूबते हुए सूर्य की लोहित रश्मियें नदी के रंग को लाल बना रही हैं । यत्र तत्र कई मृत शरीर पड़े हैं । किसी का सिर नहीं है, किसी की दोनों भुजायें कटी हैं, किसी की एक , किसी के दोनों पैर कट गये हैं, किसी का एक , अनेक सिर, भुजाएँ, पैर आदि कटे हुए अंग भी पड़े हैं । कुछ मरे घोड़े भी दिखायी देते हैं । घोड़ों के कुछ कटे अंग भी दृष्टि गोचर होते हैं । नेपथ्य में हाथियों के चिंघाड़ने, घोड़ों के हिनहिनाने और मनुष्यों के 'मारो मारो,' 'पंचनद-नरेश की जय,' 'यूनान-सम्राट की जय' इत्यादि अनेक प्रकार के शब्द सुनाई दे रहे हैं । दाहिनी ओर से कुछ यूनानी सैनिक दौड़ते हुए आते हैं । उनकी वेष भूषा पहले अंक के दूसरे दृश्य के सदृश है ।]

एक सैनिक—आह ! ऐसा युद्ध तो कभी न हुआ था ।

दूसरा—हाथियों ने अनर्थ किया ।

तीसरा—न जाने कितनों को रौंदा ।

चौथा—चीरा कम को ?

पाँचवाँ—और सूँड़ से पछाड़ा कितनों को ?

[कुछ भारतीय सैनिक उसी मार्ग से दौड़ते हुए आते हैं । प्रत्येक सिर पर लोहे का शिरस्त्राण और शरीर पर लोहे का कवच धारण किये हैं । पैरों में चर्म के जूते हैं । दाहिनी ओर पीठ पर तरकश और बाईं ओर धनुष है । धनुष के नीचे

कमर पट्टे में खड्ग झूल रहा है। सामने कमर पट्टे में छुरिका है और पीठ पर बीच में ढाल बँधी है। यवन सैनिकों को देख वे खड्ग निकाल 'मारो मारो' शब्द कर उन पर टूट पड़ते हैं। यवन सैनिक भी खड्ग निकाल 'मारो मारो' शब्द करते हुए उनसे जूझते हैं। कुछ देर तक भीषण युद्ध होता है। कुछ यवन सैनिक मरते हैं, कुछ भारतीय। अन्त में यवन सैनिक बाँईं ओर भागते हैं। भारतीय सैनिक उनका पीछा करते हैं। इन दोनों दलों के जाने के पश्चात् एक एक कर कई दल यवनों और भारतीय सैनिकों के आते हैं। इन दलों में भी इसी प्रकार युद्ध होता है। दोनों ओर के कुछ सैनिक मरते हैं। कभी यवन भागते और भारतीय उनका पीछा करते हैं तथा कभी भारतीय भागते और यवन उनका पीछा करते हैं। नेपथ्य से उसी प्रकार के शब्द आते रहते हैं। सामने से कुछ सैनिकों के साथ पर्वतक आता है। पर्वतक की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है। उसका वर्ण गौर है। वह ऊँचे पूरे गठे सुडौल शरीर और सुन्दर मुख का व्यक्ति है। वह भी सिर पर लोहे का शिरस्त्राण और शरीर पर लोहे का कवच धारण किये है। शिरस्त्राण और कवच पर यत्र तत्र सुवर्ण लगा है। पैरों में चर्म के जूते हैं और हाथों में गोधाङ्गुलित्राण (एक तरह के दस्ताने)। उसके पीठ पर भी दाहिनी ओर तरकश है, जिसमें यत्र तत्र सुवर्ण लगा है। बाईं ओर धनुष है। सुनहरी कमर बन्द में बाईं ओर सुनहरी कोष के भीतर सुवर्ण की मूठ का खड्ग लटक रहा है। पीठ के बीचों बीच ढाल है, जिसमें यत्र तत्र सुवर्ण लगा है। पर्वतक के मुख और मुद्रा से वह महान वीर दिखायी देता है, परन्तु अत्यधिक अहंमन्य। पर्वतक के सामने से कुछ सैनिकों के साथ आमीक आता है। उसकी वेष भूषा पर्वतक के सदृश ही है और सैनिकों की अन्य भारतीय सैनिकों के समान। आयुध भी उसी प्रकार के हैं। अन्तर इतना ही है कि उनके शिरस्त्राण भिन्न रङ्ग के हैं।]

पर्वतक—(आमीक को देख क्रोध से) देश द्रोही, नारकी, अधम, निर्लज्ज।

[पर्वतक खड्ग से आमीक पर प्रहार करता है। सिकन्दर का शीघ्रता से कुछ यवनों के साथ प्रवेश। सिकन्दर भी यवन सैनिकों के सदृश ही ताम्र का छज्जेदार शिरस्त्राण और कवच पहने है। शिरस्त्राण और कवच पर यत्र तत्र सुवर्ण लगा है। पैरों में चर्म के जूते हैं। उसके आयुध भी यवन सैनिकों के सदृश ही हैं;

अन्तर इतना ही है कि उसके आयुधों की मूठें सुवर्ण की हैं। वह शीघ्रता से पर्वतक और आमीक के बीच में आकर अपने खड्ग से पर्वतक के आक्रमण को बचा आमीक की रक्षा करता है। पर्वतक और सिकन्दर के शिरस्त्राण तथा कवच एवं अवस्था में अन्तर होते हुए भी दोनों का स्वरूप बहुत मिलता जुलता है। पर्वतक एकटक सिकन्दर की ओर देखता है और सिकन्दर पर्वतक की ओर। दोनों वीर कुछ देर इसी प्रकार खड़े खड़े एक दूसरे को देखते रहते हैं। सिकन्दर धीरे धीरे अपना दाहिना हाथ पर्वतक की ओर बढाता है। पर्वतक इस प्रकार आते हुए सिकन्दर के हाथ को देख कर अपना भी दाहिना हाथ बढाता है। दोनों के हाथ मिल जाते हैं। सिकन्दर बाँये हाथ से आमीक को पर्वतक के पैरों पर गिरने का संकेत करता है। आमीक पर्वतक के पैरों पर गिरता है।]

सिकन्दर – पचनद नरेश, युद्ध के बन्द करने की आज्ञा दीजिए और घोषणा कीजिए कि इस सन्धि के उपलक्ष में कल सूर्य-पूजा होगी जो आर्यावर्त और यूनान दोनों के देव हैं।

पर्वतक—ऐसा ही हो।

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

स्थान—आरनस दुर्ग की एक दालान

समय—तीसरा पहर

[कुंभी और भरणी से युक्त दो खंभों पर दालान की छत है। पीछे की ओर भित्ति दिखती है, जो रंगी हुई है। भित्ति में कोई द्वार इत्यादि नहीं हैं। शशिगुप्त और चाणक्य का प्रवेश। उनके पीछे पीछे सैनिक वेष में एक व्यक्ति और आता है। इस व्यक्ति के पीछे स्वच्छ वस्त्र, पहने तीन भृत्यों का प्रवेश। दो शयन उठाये हुये हैं और एक आसदी। भृत्य शयन और आसदी रख कर जाते हैं। शशिगुप्त और चाणक्य शयन पर और सैनिक आसदी पर बैठता है। शशिगुप्त और चाणक्य अपनी साधारण वेष भूषा में हैं।]

शशिगुप्त—यहाँ बात करना ठीक होगा।

चाणक्य—हाँ, भीतर आज कुछ उष्णता भी है।

शशिगुप्त—(सैनिक से) अब तुम सारा वृत्तान्त कहो।

सैनिक—महाराज, पचनद में भयंकर युद्ध हुआ। दोनों ओर की क्षति असीम है। यवन सैनिक कहते सुने गये कि आज पर्यन्त कभी भी उन्हें ऐसा युद्ध न करना पड़ा था और पंचनद के सैनिक भी कहते थे कि पंचनद में भी कभी वैसा युद्ध न हुआ था।

चाणक्य—अच्छा।

सैनिक—गुरुदेव, पचनद के हाथियों ने जिस प्रकार यवन सेना का विध्वंस किया, सैनिकों को रौंदा, पछाड़ा और चीरा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस गज रूपी झंझावात से यवन सेना बादलों के सदृश छिन्न भिन्न हो गयी और अलक्षेन्द्र को पर्वतक महाराज के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजना पड़ा।

शशिगुप्त—सन्धि का प्रस्ताव लेकर कौन गया था?

सैनिक—तक्षशिलाधीश।

चाणक्य—और पर्वतक ने सन्धि प्रस्ताव तत्काल स्वीकृत कर लिया?

सैनिक—सुनिए न, बड़ी विलक्षण घटना हुई। सन्धि का प्रस्ताव राजा आंभीक युद्धक्षेत्र में ही लेकर गया था, परन्तु पर्वतक महाराज ने तो उसे देखते ही 'देशद्रोही' इत्यादि शब्दों से उसे सबोधित कर उस पर आक्रमण किया। भाग्यवशात् उसी समय अलक्षेन्द्र वहाँ पहुँच गये, उन्होंने आंभीक को बचाया और वहीं सन्धि हो गयी।

शशिगुप्त—(गद्गद होकर) धन्य! पर्वतक! तुम्हें धन्य! तुम्हारे देश-प्रेम को धन्य!

चाणक्य—सन्धि किन शर्तो पर हुई?

सैनिक—यह कोई नहीं जानता। पर्वतक महाराज और अलक्षेन्द्र दोनों का हस्त-सम्मिलन हुआ और सन्धि हो गयी।

चाणक्य—(कुछ विचारते हुए) हस्त-सम्मिलन हुआ, और सन्धि हो गयी!

सैनिक—हाँ, आर्य!

चाणक्य—(उसी प्रकार विचारते हुए) बिना किन्हीं शर्तो के निश्चित हुए!

सैनिक—सन्धि हुई, आर्य, युद्ध क्षेत्र पर एक क्षण में; शर्तों की तो बात ही नहीं उठी।

[चाणक्य विचारमग्न हो जाता है। शशिगुप्त और सैनिक उसकी ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—और कोई संवाद है?

सैनिक—इतना ही कि पर्वतक महाराज और अलक्षेन्द्र मिलकर मगध पर आक्रमण के लिये प्रस्थान कर रहे हैं।

शशिगुप्त—(आश्चर्य से) इतने शीघ्र?

सैनिक—हाँ, महाराज, पंचनद में धूमधाम से सूर्य-पूजा का आयोजन किया गया है। पर्वतक महाराज और अलक्षेन्द्र मिलकर पहले सूर्य-पूजा करेंगे और उसके पश्चात् मगध की ओर प्रस्थान होगा।

चाणक्य—(सिर हिलाते हुए) समझा, मैं सब कुछ समझ गया। (सैनिक से) अच्छा, अब तुम विश्राम कर सकते हो।

[सैनिक का शशिगुप्त और चाणक्य को अभिवादन कर प्रस्थान।]

चाणक्य—वत्स, इस सन्धि का रहस्य समझ में आया?

शशिगुप्त—कुछ भी नहीं, आर्य।

चाणक्य—मैं बताता हूँ। (कुछ रुककर) वत्स, पर्वतक वीर होने के साथ ही साथ महान अहमन्य और अत्यधिक महत्वाकांक्षी मनुष्य है। उसकी अहमन्यता की निर्बलता का अलक्षेन्द्र ने उपयोग किया। अलक्षेन्द्र के स्वयं सन्धि के प्रस्ताव के कारण उसकी अहंमन्यता संतुष्ट हो गयी और उसने बिना किसी भी शर्त के अलक्षेन्द्र से सन्धि कर ली। अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के निमित्त अब दोनों मिलकर मगध पर आक्रमण करेंगे। पर्वतक होगा भारत का सम्राट् और अलक्षेन्द्र विश्वसम्राट्। दोनों की इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।

शशिगुप्त—(कुछ विचारते हुए) आपका अनुमान ठीक जान पड़ता है, आर्य।

चाणक्य—वत्स, मेरा जो आरंभ में मत था, वही ठीक था। पर्वतक के भरोसे अलक्षेन्द्र के साथ हमारा युद्ध करना एक भारी भूल होती। पर्वतक

ने युद्ध में विजय प्राप्त करके भी अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के निमित्त अलक्षेन्द्र को अपने राज्य में से इस देश में आगे बढने की स्वीकृति दे, और इस युद्ध में उसका साथ देकर, महान देशद्रोह किया है।

शशिगुप्त—तब ..तब . अब तो स्थिति पहले से भी भयानक हो गयी, आर्य ?

[चाणक्य कोई उत्तर न देकर विचार मग्न हो नेत्र बन्द कर लेता है। शशिगुप्त एकटक उसकी ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—(नेत्र खोल कर) नहीं, वत्स, पहले से अब परिस्थिति बहुत सुधर गयी है।

शशिगुप्त—(आश्चर्य से) पहले से परिस्थिति बहुत सुधर गयी है ?

चाणक्य—अवश्य।

शशिगुप्त—यह कैसे ?

चाणक्य—अलक्षेन्द्र की पञ्चनद में हार के कारण। वत्स, उसके भय से संसार काँप उठा था। साधारण जनसमुदाय उसमें ईश्वरीय शक्ति देखता था। अगणित मनुष्य उसे अवतार मानने लगे थे। वह अजेय समझा जाता था। उसका ऐसा आतंक छा गया था कि उसका नाम सुनकर लोगों के छक्के छूट जाते थे। इस हार ने उसके उस आतंक को, उसके उस भय को समाप्त कर दिया। वत्स, (कुछ रुककर) जिस समय की मैं प्रतीक्षा करता था वह समय आ गया। समय इतने शीघ्र आ जायगा इसकी मुझे भी आशा न थी। विद्रोह का ठीक अवसर उपस्थित है।

शशिगुप्त—(हर्ष से) ऐसा !

चाणक्य—हाँ, वत्स, और उनके मगध के आक्रमण के पूर्व उत्तरा पथ का विद्रोह तो एक अन्य दृष्टि से भी अनिवार्य है।

शशिगुप्त—किस दृष्टि से, आर्य !

चाणक्य—हम यदि अलक्षेन्द्र को इस देश से निकालना चाहते हैं तो उसके मगध-विजय के पूर्व ही उसे निकालना होगा। आज मगध-विजय का अर्थ भारत-विजय होता है। मगध-विजय के पश्चात् तो जिस भारतीय युद्ध का संचालन आज ईरान से होता है, वह मगध से होने लगेगा। उत्तर

में ईरान और दक्षिण में मगध के बीच हमारा उत्तरापथ तो पिस जायगा। (कुछ रुककर) इस समय उत्तरापथ के विद्रोह से अलक्षेन्द्र का ध्यान बँट जायगा उसकी शक्ति भी बँट जायगी।

शशिगुप्त—(कुछ सोचते हुए) आप ठीक कह रहे हैं, आर्य।

चाणक्य—(गंभीरता से सोचते हुए) और देखो, वत्स, एक काम और भी करना होगा।

शशिगुप्त—कौन सा, गुरुदेव ?

चाणक्य—उसका मगध की ओर बढना रुक जाय, विद्रोह के साथ ही साथ इसका भी प्रयत्न।

शशिगुप्त—यह कैसे होगा ?

चाणक्य—(उसी प्रकार गंभीरता से सोचते हुए) इसके लिए मैं पर्वतक से मिल उसके देशभक्ति के भावों को उभारूँगा और...और भी (शशिगुप्त की ओर देखते हुए) एक बात करूँगा।

शशिगुप्त—क्या, आर्य ?

चाणक्य—यवन सैनिक हतोत्साह तो हो ही गये हैं, साथ ही यवन सैनिकों के सङ्ग अब पर्वतक के भारतीय सैनिक भी हैं अतः भारतीय सैनिकों द्वारा हतोत्साह यवन सेना में आगे बढने के लिए विरोधी भावनाओं का प्रसार कराऊँगा।

शशिगुप्त—(आश्चर्य से चाणक्य की ओर देखते हुए) गुरुदेव...गुरुदेव ..

चाणक्य—(खड़े होते हुए) तो, वत्स, उत्तरापथ के विद्रोह का संचालन तुम करो। मै वेष बदल पर्वतक के पास प्रस्थान करता हूँ।

शशिगुप्त—(हर्ष से उठते हुए) जैमी आज्ञा। आर्य मेरी बेड़ियाँ टूटने से मुझे जो हर्ष हुआ है वह मैं शब्दों में नहीं कह सकता। (कुछ रुककर) तो अब मैं अविलम्ब युद्ध का शख फूँक सकता हूँ न ?

चाणक्य—इसी समय इसी समय, वत्स तत्काल।

[दोनों का हर्ष और उत्साह से प्रस्थान। भृत्य आकर शयन और आसंदी को उठा कर ले जाते हैं।]

परदा उठता है

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—इरावती (रावी) के तट पर सिकन्दर का शिविर

समय—प्रदोष

[दूर पर पीछे की ओर इरावती का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, जो सूर्य की किरणों से चमक रहा है। नदी के इस पार दोनों ओर दूर दूर तक यवन सेना के डेरों की पंक्तियाँ दिखती हैं। निकट ही बाईं ओर सिकन्दर के डेरे का कुछ बाहरी भाग दिखायी देता है। डेरे के सामने के मैदान में बहुत सी आसदियाँ रक्खी हैं, इनमें से एक पर सिकन्दर बैठा है और दूसरी पर पर्वतक। दोनों सैनिक वेष में हैं, पर दोनों के सिर खुले हुए हैं। शेष आसदियाँ रिक्त हैं। सिकन्दर की आसदी के निकट एक ऊँची चौकी पर मदिरा के रत्नजटित पात्र रखे हुए हैं और वह पर्वतक के साथ के सभाषण में लगातार मदिरा पीता रहता है। पर्वतक मदिरा नहीं पीता।]

सिकन्दर—यह मित्रता, महाराज महत्व की, अत्याधिक महत्व की सिद्ध होगी।

पर्वतक—जो मैत्री बराबर वालों मे होती है, वह महत्व की तो होती ही है, सम्राट।

सिकन्दर—फिर ऐसी मित्रता तो इसके पूर्व कभी हुई ही नहीं। यह मैत्री पर्वतक और अलक्षेन्द्र की न होकर भारत और यूनान की है, पूर्व और पश्चिम की है; उन दो राष्ट्रों की है, जिनसे अधिक प्राचीन जिनसे अधिक सभ्य, जिनसे अधिक सुसंस्कृत, जिनसे अधिक शक्तिशाली कोई राष्ट्र अब तक इतिहास में नहीं हुए; उन दो दिशाओं की है जिनमें सूर्य निकलता और अस्त होता है।

पर्वतक—आप ठीक कहते हैं, सम्राट, और इस बात का सदा ध्यान रखिएगा कि यह मित्रता निभेगी तभी जब भारत और यूनान, पूर्व और पश्चिम दोनों का समान रूप से उत्कर्ष होगा; एक दूसरे पर आधिपत्य करने का प्रयत्न न करेगा।

सिकन्दर—महाराज, विश्वास रखिएगा कि अलक्षेन्द्र आपके लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत रहेगा।

पर्वतक—मेरे लिए सब कुछ करने का बार बार यह विश्वास दिलाकर आप मेरा अपमान करते हैं, सम्राट। मैत्री के कारण मेरे लिए आप और आपके लिए मैं तो सब कुछ करेंगे ही ; हमें तो एक दूसरे के राज्यों के लिए, एक दूसरे के देशों के लिए सब कुछ करना होगा।

सिकन्दर—मेरा यही अर्थ था महाराज, अपने राज्यों और देशों को छोड़ कर हम हैं ही क्या ? (कुछ रुककर) आपकी और मेरी सन्धि के पश्चात् मैं सदा (सामने की ओर देखते हुए) एक स्वप्न देखा करता हूँ।

पर्वतक—कैसा, सम्राट ?

सिकन्दर—(पर्वतक की ओर देख कर) अब तक आपको नहीं बताया, परन्तु आज बताता हूँ। (कुछ रुक कर फिर सामने की ओर देखते हुए) मैं देखता हूँ पूर्व और पश्चिम का मिला हुआ एक महान साम्राज्य। पूर्वीय टुकड़े की राजधानी पाटलिपुत्र में और पाश्चमीय टुकड़े की एथन्स में। पूर्वीय भाग के अधिपति आप और पश्चमीय भाग का मैं। दोनों में अगाध मैत्री और दोनों एक शरीर की दो भुजाओं के सदृश उस साम्राज्य के उत्कर्ष में दत्तचित्त। (फिर कुछ रुककर) अब तक के समस्त विश्व के इतिहास में ऐसे महान सम्राट नहीं हुए : आज हैं भी नहीं ; हमारे पश्चात् भी कदाचित् ही हों, ससार का इतिहास इन्हीं दो नामों से गूँजेगा, और प्रतिध्वनित होता रहेगा।

पर्वतक—आपकी इसी कल्पना को हमें कार्य रूप में परिणत करना है।

सिकन्दर—(फिर से पर्वतक की ओर देख कर) महाराज, मैं आपको केवल भारतीय सम्राट के पद पर देख कर सन्तुष्ट नहीं हो सकता, मुझे संतोष होगा तब, जब आप सारे जबूद्वीप के अधीश्वर के पद पर आसीन होंगे।

पर्वतक—हमारे इस सम्मिलन के पश्चात् हमारा यह उत्कर्ष असभव नहीं है।

सिकन्दर—असंभव ? क्या कहते हैं, मै तो संसार में कोई असभव बात है, यह मानता ही नहीं। (कुछ रुककर) हाँ, पहले कभी कभी मुझे किसी किसी कार्य की सफलता में कुछ सन्देह हो जाता था, पर जब मुझे किसी

भी कार्य में असफलता न मिली तब मुझे स्वयं कुछ आश्चर्य सा हुआ, मैंने प्रसिद्ध ऑरेकल एमन* से अपनी इस सफलता का रहस्य जानना चाहा।

पर्वतक—अच्छा, उसने इसका कारण आपको बताया ?

सिकन्दर—हाँ, उसने कहा कि मैं ईश्वरीय कार्य करने के लिए इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ हूँ। मेरे पिता यथार्थ में मकदूनिया के राजा फिलिप्स नहीं, किन्तु यूनानी देवता ज्यूस† हैं। उस दिन के पश्चात् कोई बात भी असंभव है, यह मेरे हृदय में ही नहीं उठता।

पर्वतक—अवतार, ववतार तो मैं मानता नहीं, सम्राट, पर इतना अवश्य मानता हूँ कि आप साधारण मनुष्य नहीं।

सिकन्दर—अवतार आप नहीं मानते ?

पर्वतक—नहीं सम्राट।

सिकन्दर—आपका और मेरा साथ रहा तो एक दिन आप मान जायँगे कि महान कार्य साधारण मनुष्य से न होकर अवतार से ही होते हैं।

पर्वतक—महान कार्य साधारण मनुष्य से नहीं होते, यह तो मैं आज भी मानता हूँ और इसीलिए तो मैंने कहा कि मैं आपको असाधारण मनुष्य मानता हूँ।

सिकन्दर—(हँसते हुए) असाधारण मनुष्य और अवतारों में कोई अन्तर नहीं है, महाराज! और यदि मैं असाधारण मनुष्य हूँ, तो आप भी हैं। देखिए न हम दोनों एक दूसरे से कितने मिलते जुलते हैं।

पर्वतक—हाँ, हम दोनों के स्वरूप का इतना सामञ्जस्य एक आश्चर्य की बात है।

सिकन्दर—हमारी सन्धि का यही रहस्य भी है, महाराज। मैं और मेरी सेना पराजय किसे कहते हैं, यह जानते ही न थे। पहले पहल मेरी सेना आपकी सेना से हारी। मुझे आश्चर्य हुआ। मैं तलमला उठा। परन्तु जब युद्ध क्षेत्र में मैंने आपको देखा और आपका और अपना रूप इतना मिलता हुआ पाया तब मैं चकित सा रह गया। मुझे जान पड़ा जैसे आपके रूप

* Oracle Ammon. † Zeus.

में मैं ही खड़ा हूँ और मैं अपने आपसे हारा हूँ। यदि ऐसा न होता तो चाहे मैं प्राण दे देता, पर मेरा हाथ सन्धि के लिए आपकी ओर न बढता। उस समय अपनी हार जीत, मान अपमान, सभी बातें मुझे विस्मृत हो गयीं, मेरा हाथ आपसे आप आपकी ओर बढ चला। मेरे हाथ के साथ ही आपका हाथ भी बढा। जैसे किसी दैवी शक्ति ने हमारे हाथों का सम्मिलन करा दिया हो। (कुछ रुककर) महाराज, युद्ध के पश्चात् सन्धि होती है, बहुत वाद-विवाद के पश्चात् , परन्तु इस सन्धि में तो एक क्षण भी न लगा।

पर्वतक—आपके हाथ बढने के पश्चात् सन्धि में विलम्ब कैसे लग सकता था, सम्राट ? पर्वतक ऐसा नीच नहीं कि बराबरी के नाते वाले व्यक्ति के बढते हुए मैत्री के हाथ में अपना हाथ न देकर सन्धि की शर्तों का पुलिंदा दे।

सिकन्दर—आप अवतार और दैवी शक्ति नहीं मानते, पर मैं मानता हूँ, महाराज। मेरे मत से आपकी और मेरी मैत्री दैवी प्रेरणा से हुई है। मैंने आपके राज्य पर आक्रमण किया था, इसलिए मेरी हार के विना आप सन्धि न करते। और मेरी हार के पश्चात् यदि आप सन्धि के लिए कोई शर्तें रखते तो चाहे मेरे प्राण क्यों न चले जाते, मैं उन शर्तों को न मानता। आपकी और मेरी मैत्री के लिए ही दैवी शक्ति ने मुझे पंचनद में हराया। आपकी और मेरी मैत्री के लिए ही दैवी शक्ति ने आपके जेता होने पर भी आपकी विजित के सदृश मुझसे सन्धि करा मेरी सेना को आगे बढ़ने की स्वीकृति दिलायी और भविष्य की विजयों के लिए आपको मेरा सहायक बनाया। (कुछ रुककर) महाराज, हम दोनों दैवी कार्य के लिए अवतीर्ण हुए हैं। हमारी मैत्री के बिना वह कार्य पूरा न हो सकता था। इस महान साम्राज्य रूपी शरीर के लिए हम दो हाथों की आवश्यकता थी।

[पर्वतक कुछ उत्तर न देकर मुस्करा देता है। कुछ देर तक दोनों एक दूसरे को देखते हैं। [निस्तब्धता रहती है।]

सिकन्दर—क्यों, महाराज, आर्यावर्त मे तो बहुत बड़े बडे सन्त और भविष्यवक्ता रहते हैं ?

पर्वतक—बहुत, सम्राट।

सिकन्दर—इमारे भविष्य के सम्बन्ध मे इनसे भी परामर्श करना चाहिए।

पर्वतक—जिस प्रकार आप पश्चिमी ऑरेकलों से अपने भविष्य के सम्बन्ध में बातचीत कर चुके हैं उसी प्रकार मैंने अपने भविष्य के सम्बन्ध में यहाँ के आर्य और बौद्ध दोनों महात्माओं से पूछा है।

सिकन्दर—(उत्सुकता से) उन्होंने क्या कहा ?

पर्वतक—वही जो आप मुझे बनाना चाहते हैं ?

सिकन्दर—(हर्ष से) जंबूद्वीप का सम्राट !

पर्वतक—जी हाँ।

सिकन्दर—(और भी उत्सुकता से) यह आपने इन महात्माओं से कब पूछा था ?

पर्वतक—आपकी और मेरी सन्धि के बहुत पूर्व ; और यद्यपि मुझे इन बातों में विश्वास नहीं है, तथापि आश्चर्य यह है कि सबने एक ही बात कही।

सिकन्दर—(हर्ष से खड़े होकर) तो मेरा स्वप्न सत्य होगा। मैं जानता था होगा, अवश्य होगा। मेरे हर स्वप्न में, हर कार्य में, दैवी प्रेरणा रहती है। यह स्वप्न भी मिथ्या कैसे हो सकता है ? यह सन्धि भी बिना किसी उद्देश्य के कैसे हो सकती थी (पर्वतक के निकट जाकर) महाराज, मैं आपको जंबूद्वीप के अधीश्वर होने की आज ही बधाई देता हूँ।

[पर्वतक भी खड़ा हो जाता है। सिकन्दर पर्वतक को हृदय से लगाता है। फिर दोनों टहलकर बातें करने लगते हैं।]

सिकन्दर—पचनद के युद्ध में मुझे दो ही बातों का दुख है, आपके पुत्र और मेरे घोड़े बूकाफेलस का निधन।

[नेपथ्य में हेलन के गाने का शब्द आता है।]

सिकन्दर—(मुस्कराकर धीरे से) हेलन गा रही है।

पर्वतक—(धीरे से) बड़ा सुन्दर गाती है।

[दोनों फिर आसदियों पर बैठकर ध्यान से गान सुनते हैं। सिकन्दर फिर मदिरा-पान आरम्भ करता है।]

गान

नव पल्लव, सहकार मञ्जरी सुमनों का मीठा सा हास,
आतुर उर मे उत्कण्ठा ले मुग्ध मदिर आता मधुमास।
दिनकर के उत्तप्त हृदय का पाकर आमन्त्रण चुपचाप,
सरिताओं का शीतल उर रस उड़ उड़ जाता बनकर भाप।
हरा हरा मन भावन सावन झूलों पर के मधुर मलार,
कजरारे उमड़े घन लोचन बरसाते अविरल जल धार।
विभावरी का विहँसित विधु मुख खिलते कुमुद कली अवतंस,
कमलो की मकरंद माधुरी पीकर करते कूजन हंस।
ऊषा ले उत्सग पोछती शिशर विकम्पित बाल प्रभात,
अरुण तपाता रवि किरणों से सिहरे पद कर मुख जल जात।
वृक्षो के दल झड़ झड़ पडते जब हठ करता कठिन समीर,
सूखे तन मे स्नेह भरा मन हो हो उठता अधिक अधीर।

[धीरे धीरे गान दूर चला जाता है।]

पर्वतक—भारत की षट् ऋतुओं का वर्णन है।

सिकन्दर—हाँ, यह लड़की बड़ी सुन्दर कविता करती है।

पर्वतक—भावुक है न ? (कुछ रुककर सकुचाते हुए) एक बात कहूँ, सम्राट !

सिकन्दर—मुझसे कुछ कहने में आपको संकोच करना ही नहीं चाहिए।

पर्वतक—(इधर उधर देखते हुए) हेलन बड़ी सुन्दर है।

सिकन्दर—(मुस्कराते हुए) अच्छा, आप उस पर कुछ रीझ गये दिखते हैं। सुन्दर स्त्रियाँ वीरों के मनोरंजन की वस्तु हैं ही। कठिन परिश्रम के पश्चात् (मदिरा-पात्र की ओर संकेत कर) यह, और सुन्दर स्त्री, ये दो ही थकावट को दूर करने के अच्छे से अच्छे उपाय हैं।

पर्वतक—(मदिरा-पात्र की ओर संकेत कर मुस्कराते हुए) इसका तो मुझे अनुभव नहीं है, हाँ, दूसरी वस्तु का थोड़ा बहुत अनुभव है। वह वीरों के परिश्रम निवारण का बहुत बड़ा साधन अवश्य है।

सिकन्दर—मुझे दोनों का ही अनुभव है, महाराज। यदि दोनों में

परिवर्तन होता रहे, अर्थात् नित नयी प्रकार की मदिरा मिले और नित नयी सुन्दरियाँ तो चाहे कितनी ही दूर घोड़े पर जाइए, कितना ही युद्ध कीजिए, थकावट आती ही नहीं।

पर्वतक—आप तो तीन तीन विवाह कर चुके हैं।

सिकन्दर—हाँ पहले राक्साना[१] से फिर स्टैटिरा[२] से और फिर पैरिसेटिस[३] से परन्तु इन विवाहों के तो राजनैतिक कारण भी थे।

पर्वतक—(मुस्कराकर) हाँ, मनोरजन के लिए इतने से ही काम थोडे ही चलता है।

[सिकन्दर जोर से हँस पडता है। पर्वतक भी उसका साथ देता है।]

पर्वतक—तो सम्राट इस हेलन · (चुप हो जाता है।)

सिकन्दर—मैं प्रयत्न करूँगा, महाराज, परन्तु वह एक विचित्र सी लड़की है।

[पर्वतक कुछ न कहकर प्रश्न-सूचक मुद्रा से सिकन्दर की ओर देखता है।]

सिकन्दर—पहले उसने निर्णय किया था कि वह विवाह ही न करेगी, फिर एकाएकी तक्षशिला में अपने पिता से कह बैठी कि शशिगुप्त से विवाह करूँगी; अब सुना है शशिगुप्त से घोर घृणा करती है।

पर्वतक—अच्छा!

सिकन्दर—हाँ, बड़ी निर्भय, बड़ी वाचाल, बड़ी स्वच्छन्द, बड़ी भावुक है।

पर्वतक—परन्तु पहले शशिगुप्त से विवाह करने का प्रस्ताव कर फिर उससे घृणा करने का क्या अर्थ है?

सिकन्दर—उसके पिता ने कहा कि देशभक्त देशद्रोही से विवाह नहीं किया करते। यह बात उसके मन में ऐसी बैठी कि तत्काल बोली—पिताजी, आप ठीक कहते हैं, शशिगुप्त प्रेम का पात्र नहीं घृणा की वस्तु है।

पर्वतक—अच्छा, बड़ी देशभक्त भी है।

---

१ Roxana २ Statira ३ Parysatis

सिकन्दर—बड़ी।

पर्वतक—तब तो मैं उसे बहुत पसन्द आऊँगा ?

सिकन्दर—हो सकता है। (कुछ ठहरकर) और देखिए, वह यदि स्वीकार न करे तो इस विषय को छोड़ भी देना चाहिए, क्योंकि सिल्यूकस का भी ध्यान रखना होगा। सिल्यूकस इस समय मेरा सबसे बड़ा सेनापति है। हेलन की माँ की मृत्यु हो जाने के कारण वह हेलन को सदा अपने पास ही रखता और उसे प्राणों से अधिक प्यार करता है। (कुछ रुककर) अब मुझे ज्ञात होगया कि आप इस सम्बन्ध में अनुराग रखते हैं। मैं ईरान और यूनान से आपके लिए हेलन से भी कहीं अधिक सुन्दर रमणियों के झुंड भेज सकता हूँ, झुंड।

पर्वतक—(बेपरवाही से) हाँ, हाँ, मैं कुछ प्रेम में अन्धा थोड़े ही हो गया हूँ। स्त्रियों का उचित स्थान मैं जानता हूँ और उन्हें मैं थोड़ी देर के मनोरजन का साधन मात्र मानता हूँ।

सिकन्दर—(मुस्कराते हुए) परन्तु वह मनोरंजन भी (मदिरा के पात्र की ओर संकेत कर) बिना इसके पूर्णता को नहीं पहुँच सकता।

[दोनों हँसने लगते हैं। इसके पश्चात् कुछ देर तक चुप हो जाते हैं। निस्तब्धता रहती है।]

सिकन्दर—क्यों, महाराज, मगध तक पहुँचने में हमें कितना समय लगेगा ?

पर्वतक—(कुछ सोचते हुए) अभी तो मगध बहुत दूर है; सम्राट।

सिकन्दर—(कवच के भीतर से भारतवर्ष का मानचित्र निकाल उसे घुटनों पर फैला कर देखते हुए) उत्तरापथ में सिन्धु पार कर मैं तक्षशिला पहुँचा। वहाँ से वितास्ता पार की। सिन्धु से लेकर वितास्ता तक तो कोई युद्ध नहीं हुआ, और (मुस्कराकर पर्वतक की ओर देखते हुए) वितास्ता पर जो युद्ध हुआ वह मै जीवन भर विस्मृत नहीं कर सकता।

पर्वतक—(मुस्कराते हुए) ऐसा ?

सिकन्दर—(पर्वतक की ओर देखते हुए) महाराज, ईरान, मिश्र, बैबीलोन, सुसा, किसी भी देश में मुझे ऐसा युद्ध नहीं करना पड़ा, जैसा वितास्ता-तट

पर। (कुछ देर रुककर फिर मानचित्र की ओर देखते हुए) चन्द्रभागा और इरावती के बीच में भी किसी का साहस युद्ध करने का नहीं हुआ। (फिर पर्वतक की ओर देखते हुए) होता भी कैसे ? (मुस्कराकर) अब तो आप भी साथ हैं।

पर्वतक—मैं समझता हूँ मगध तक आपको युद्ध करना ही न पड़ेगा। किसी का साहस नहीं कि हम लोगों का सामना कर सके।

सिकन्दर—(फिर मानचित्र को देखते हुए) मगध अभी, दूर तो बहुत है।

पर्वतक—दूर अवश्य है, पर युद्ध न हुआ तो हम शीघ्र ही पहुँचेंगे।

सिकन्दर—(मानचित्र को समेट कर रखते हुए) और मगध में युद्ध होगा ?

पर्वतक—(कुछ सोचते हुए) कह नहीं सकता। इस समय भारत का सर्वश्रेष्ठ राज्य वही है। वहाँ के धन की तो गणना ही नहीं की जा सकती। आपको अब तक के युद्धों में जितना धन मिला है, उस सबको मिलाकर उससे कई गुना अधिक अकेले मगध से मिलेगा।

सिकन्दर—ऐसा ?

पर्वतक—हाँ, सम्राट ; मैं समझता हूँ, बिना युद्ध के।

सिकन्दर—इतना धन रहते हुए भी वे युद्ध न करेंगे ?

पर्वतक—मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।

सिकन्दर—यह तो आश्चर्य की बात है।

पर्वतक—बात यह है कि नंद इतना विलासप्रिय है कि यही नहीं जानता कि सूर्य कब उदय होता है और कब अस्त। आपको भी मनोरंजन के लिये मदिरा और सुन्दरियाँ चाहिए ; (मुस्कराकर) मुझे भी पिछली वस्तु ; पर हमें ये वस्तुएँ चाहिए क्षणिक मनोरजन के लिए ; उसे तो इन दो वस्तुओं के अतिरिक्त और संसार में कुछ चाहिए ही नहीं।

सिकन्दर—ठीक, और इनका प्रबन्ध तो उसके लिए कारावास में भी किया जा सकता है।

पर्वतक—सरलता से।

सिकन्दर—(कुछ सोचते हुए) तो वहाँ युद्ध न होगा ?

पर्वतक—मैं तो यही समझता हूँ।

सिकन्दर—(कुछ सोचते हुए ठहरकर) वहाँ की प्रजा तो उपद्रव न करेगी ?

पर्वतक—महात्मा बुद्ध के अहिंसा सिद्धान्त का वहाँ की प्रजा पर बहुत प्रभाव है।

सिकन्दर—ठीक।

पर्वतक—(कुछ सोचते हुए) एक ही भय है।

सिकन्दर—किसका ?

पर्वतक—वहाँ के मन्त्री राक्षस का। वह बड़ा देशभक्त है। उसका वहाँ प्रभाव भी बहुत है। उसने यदि युद्ध करने की ठानी तो वहाँ बड़ा भीषण युद्ध होगा।

सिकन्दर—वितास्ता के तट से भी बड़ा ?

पर्वतक—(कुछ सोचते हुए) हो सकता है।

[चन्द्रोदय होता है। नेपथ्य में फिर हेलन की गानध्वनि आती है। हेलन का गाते हुए प्रवेश।]

गान

मत हँस, मत हँस, रजनीकान्त

यह स्मित लख सागर की लहरें हो उठतीं उद्भ्रान्त।
चन्द्रकान्त का उपल हिया भी रह सकता कब शान्त,
तेरी यह छवि आतुर करती झरते अश्रु नितान्त।
अवनी के अङ्गों में कपन रजनी के नीहार,
नलिनी के नयनों में जल कण ये तेरे उपहार।
विकल चकोरी अपना पन खो चुग लेती अङ्गार,
हे शशि ! कितनी तीखी है यह मधुर हँसी की धार।
तुझसे शून्य तमोमय अम्बर तममय सब संसार,
यह सुन्दरता का विष है या है यह मन की हार ?

[गाते और मुस्कराते हुए हेलन एक आसंदी पर बैठ जाती है। पर्वतक एक टक हेलन की ओर देखता है, सिकन्दर पर्वतक की ओर।]

पर्वतक—सुन्दर गान है, कुमारी।

हेलन—हाँ, महाराज, यह मेरा आज ही का लिखा हुआ काव्य है। कहिए, आर्यावर्त की चाँदनी का ठीक वर्णन है न ?

पर्वतक—अत्यन्त सुन्दर।

[सिल्यूकस का शीघ्रता से प्रवेश । वह सिकन्दर का अभिवादन करता है।]

सिल्यूकस—सम्राट अभी अभी उत्तरापथ से सूचना मिली है कि शशिगुप्त ने वहाँ विप्लव किया है।

सिकन्दर—(अत्यधिक क्रोध से खड़े होते हुए) शशिगुप्त ने विप्लव किया है ! शशिगुप्त ने विप्लव किया है !

[पर्वतक और हेलन भी खड़े हो जाते हैं। हेलन का मुख प्रसन्नता से खिल उठता है और ओष्ठों पर मुस्कराहट दौड़ जाती है।]

सिल्यूकस—हाँ, सम्राट, इतना ही नहीं, उसने हमारे प्रतिनिधि निकैनोर का वध भी कर डाला है।

सिकन्दर—(दाँत पीसकर) ओह !

हेलन—(सिल्यूकस के निकट जाकर अपनी दोनों भुजाएँ उसके एक कंधे पर डाल) तो, पिताजी, शशिगुप्त अब देशद्रोही नहीं रहा।

[सिल्यूकस झटका देकर उसकी दोनों भुजाएँ हटा देता है। हेलन आश्चर्य से सिल्यूकस की ओर देखती है।]

सिकन्दर—(हेलन के कथन पर कोई ध्यान न देकर अत्यधिक क्रोध से) इस शशिगुप्त का काल उसके सिर पर नाच रहा है। उत्तरापथ में अश्वकों के युद्ध में यह परास्त हो ही रहा था, परन्तु कुछ समय तक और जीना कदाचित् इसके भाग्य में बदा था। यह मेरी शरण आया और बच गया, इतना ही नहीं, आरनस का अधिपति हो गया। इस बार इसकी बोटी बोटी काटी जायेगी। ऐसी बुरी मौत मरवाऊंगा कि किसी को न मरवाया होगा। इसके साथ ही उत्तरापथ के एक एक भारतीय का वध होगा। वहाँ के किसी ग्राम, पुर और नगर में एक गृह न बचेगा। मनुष्यों के शव और सपत्ति की भस्म की ढेरियाँ...

हेलन—(शीघ्रता से सिकन्दर के निकट जाते हुए) सम्राट, सम्राट, आप यह कैसी प्रतिज्ञा . कैसी भीषण प्रतिज्ञा कर रहे हैं। शशिगुप्त ने क्या अपराध किया है, सम्राट ? उसने देशद्रोह किया था। अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए उसने विप्लव किया होगा। (पर्वतक की ओर देखकर) महाराज पर्वतक के युद्ध करने के पश्चात् भी यदि आप इनसे सन्धि कर सकते थे, इन्हें इतना बड़ा मित्र बना सकते थे, तो क्या शशिगुप्त...शशि...

सिकन्दर—(अत्यधिक क्रोध से) मूर्ख लड़की...

सिल्यूकस—(घबड़ाहट से) अत्यन्त मूर्ख .

हेलन—(आश्चर्य से पर्वतक की ओर देखकर) क्यों, महाराज, आप... आप अपने देशवासियों पर इस प्रकार का...इस प्रकार का अत्याचार... अत्याचार देख...देख सकेंगे ?

पर्वतक—(मुस्कराते हुए) कभी नहीं, कुमारी, और...और सम्राट क्रोध के कारण ऐसा कह रहे हैं, विप्लव करने वालों को तो उचित दण्ड मिलेगा ही, पर...पर निर्दोष नागरिकों को उन सा वीर कभी कोई कष्ट दे सकता है ?

[सिकन्दर दाँत पीसता है। हेलन आश्चर्य से कभी सिकन्दर कभी सिल्यूकस और कभी पर्वतक को देखती है। सिल्यूकस घबड़ाते हुए कभी हेलन और कभी सिकन्दर को देखता है। पर्वतक कुछ मुस्कराते हुए हेलन की ओर देखता है।]

यवनिका

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र नगर में नंद का प्रमोदोद्यान

समय—मध्याह्न

[उद्यान वही है जो दूसरे अंक के पहले दृश्य में था, परन्तु इस दृश्य में उद्यान का दूसरा भाग दिखायी देता है। दूर पर पीछे की ओर उद्यान का कोट है, जो हरित लताओं से आच्छादित है। कोट के ऊपर आकाश मंडल दिखता है। वह मध्याह्न के सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है। उससे कुछ कम दूरी पर ऊँचे ऊँचे

आम के वृक्ष दिख पड़ते हैं, जो मंजरी से लदे हुए हैं। इन वृक्षों के सामने उनसे कुछ कम दूर पर पुष्पों की क्यारियाँ है, जिनमें वसन्त के कारण विकसित फूलों की भरमार है। इन क्यारियों के बीच में एक चौक है, जो संगमरमर से पटा है। चौक के बीच में एक अष्ट दल कमल के आकार का कुण्ड बना हुआ है। कुण्ड में केशरी रंग घुला है। नंद अनेक नर्तकियों के साथ होली खेल रहा है। वह स्वर्ण की पिचकारी लिये है और कुण्ड से अपनी पिचकारी भरभर कर नर्तकियों पर चला रहा है। कई नर्तकियाँ भी स्वर्ण की पिचकारियाँ लिये हैं और वे भी कुण्ड में से अपनी अपनी पिचकारियाँ भर कर नंद पर चला रही हैं। कई वस्त्रों की थैलियों में गुलाल लिये हैं और वे गुलाल उड़ा रही हैं। कई गा रही हैं। समय-समय पर हँसी की तथा 'होली है' की ध्वनि गूंज उठती है।]

गान

सजनि, बतला दे मुझे है कौन तेरा देश ?
नयन तेरे राग भीने,
चूनरी के कूल झीने,
झूमते पग,
अलस से डग,
मौन कोयल कूक उठती देख तेरा वेष।
सुन चरण की चाप कोमल,
चौंक स्वप्नों का मदिर दल,
नयन में गल
हृदय में ढल,
कौन स्मृति में खींच लाता भूलता सन्देश ?
राग में डूबे मधुर क्षण,
अरुण लाल गुलाल के कण,
हास्य से घन,
सरस वीक्षण,
बाल सुमनों में जगाता पुलक का उन्मेष।

[राक्षस का प्रवेश]

राक्षस—(नंद के निकट आकर) महाराज !

[नद अपने खेल में मग्न रहता है और कोई उत्तर नहीं देता ।]

राक्षस—(नद के और निकट जाकर) महाराज ! महाराज !

नंद—कौन ? (राक्षस की ओर देखकर) मंत्री जी ! (जोर से) आइए, आइए, खेलिए होली ।

[बहुत सी नर्तकियाँ राक्षस पर रङ्ग गुलाल डालती हैं और फिर जोर से 'होली है' शब्द होता है । गान पूर्ण होने के कारण बन्द हो जाता है ।]

राक्षस—(क्रोध से गरजकर) होली नहीं, आज तो केवल वसन्त पचमी है । होली को अभी एक मास दस दिन हैं ।

नंद—परन्तु आज से होलिकोत्सव आरम्भ हो जाता है, मंत्री जी ।

राक्षस—(ऊँचे स्वर से) ठीक है, परन्तु इस बार होलिकोत्सव समाप्त होने के पहले ही, होली जलने के पहले ही, मगध का राज्य भस्म होने वाला है ।

नंद—क्या हुआ है, मंत्रीजी ?

राक्षस—महाराज, आप सुनते कहाँ हैं, कि क्या हुआ है ? परन्तु आज बिना कहे यह राक्षस यहाँ से जाने वाला नहीं है । (नर्तकियों की ओर घूमकर उत्तेजना से) हटो, तुम सब, एक ओर हट जाओ । मुझे महाराजाधिराज से अत्यन्त आवश्यक बातें करनी हैं ।

[राक्षस का उत्तेजित स्वर सुन नर्तकियाँ सहम कर एक ओर हट जाती हैं । नंद भी कुछ सहम, चुपचाप खड़े हो राक्षस की ओर देखने लगता है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

नद—(कुछ डरते हुए) आज तो आप बहुत उत्तेजित हैं, मंत्री जी ।

राक्षस—ईश्वर को धन्यवाद है कि आप आज बहुत स्वस्थ हैं, महाराज ।

नंद—(कुछ क्रोध से) परन्तु आप इतने उत्तेजित क्यों हैं ?

राक्षस—खेद यही है कि मैं केवल उत्तेजित हूँ, इससे अधिक कुछ नहीं । महाराज, महीनों मे प्रयत्न कर रहा हूँ कि आपके दर्शन कर आपसे कुछ कहूँ, परन्तु एक तो दर्शन दुर्लभ, फिर यदि दर्शन हो भी जायँ तो आपका स्वस्थ मिलना असंभव ।

नंद—(कुछ और क्रोध से ऊबते हुए) आज तो मेरे दर्शन हो गये न, मैं स्वस्थ भी मिल गया न ? अब आपको जो कुछ कहना हो शीघ्र कह डालिए, व्यर्थ समय नष्ट न कीजिए ।

राक्षस—समय नष्ट ? महाराज, आप जानते हैं आपका राज्य नष्ट होने वाला है । यूनान से अलक्षेन्द्र ने भारत पर आक्रमण किया है ।

नंद—यूनान ! यह यूनान कहाँ है और यह अलक्षेन्द्र कौन है ?

राक्षस—यूनान पश्चिम मे एक बहुत बडा राज्य है, महाराज, और अलक्षेन्द्र वहाँ का सम्राट है, जो विश्व-विजय करने के निमित्त निकला है ।

नंद—(कुछ सोचते हुए) अच्छा ।

राक्षस—भारत में तक्षशिला के राजा आभीक ने देश द्रोह कर अलक्षेन्द्र का स्वागत किया, परन्तु पचनद नरेश पर्वतक ने उससे युद्ध किया ।

नंद—और उस युद्ध मे क्या हुआ ?

राक्षस—पर्वतक की विजय ।

नंद—(प्रसन्न होकर) तो बस हो गया, अलक्षेन्द्र मारा गया, मगध का राज्य कैसे नष्ट होगा ? (जोर से) नर्तकियो ! नर्तकियो ! आओ आओ ।

[नर्तकियाँ दौड कर आने लगती हैं ।]

राक्षस—(बहुत जोर से) ठहरो, नर्तकियो ! ठहरो ।

[नर्तकियाँ एकाएक ठहर जाती हैं ।]

राक्षस—सुनिए, महाराज, पूरी बात सुनिए । अलक्षेन्द्र मारा नहीं गया । युद्ध के पश्चात् पर्वतक और अलक्षेन्द्र की सन्धि हो गयी और दोनों मिलकर मगध-विजय के लिए पंचनद देश से चल पड़े हैं ।

नंद—(अधीरता से) कब चले ?

राक्षस—बहुत समय नहीं हुआ है , अभी भी समय है, महाराज, अभी भी हम युद्ध के लिए... ..

नंद—हाँ, बहुत समय ..बहुत समय है, मत्री जी, अभी तो वे दूर...बहुत दूर हैं ! फिर मगध की रक्षा ईश्वरीय शक्ति करती है । और युद्ध की ही यदि

तैयारी करनी है, तो भी बहुत समय है। होलिकोत्सव समाप्त हो जाने दीजिए। होलिकोत्सव के पश्चात् हम युद्ध की तैयारी करेंगे। (जोर से) नर्तकियो ! ओ नर्तकियो ! आओ, आओ।

[नर्तकियाँ दौड़ कर आने लगती हैं।]

राक्षस—(बहुत जोर से) ठहरो, नर्तकियो ! ठहरो !

[नर्तकियाँ एकाएक ठहर जाती हैं।]

नंद—(अत्यन्त क्रोध से) यह आप क्या कर रहे हैं · क्या कर रहे हैं, मंत्रीजी. आप मेरे पिता के समय से मंत्री हैं, इसलिए मैंने अब तक सहन किया। राजाज्ञा के ऊपर आप अपनी आज्ञा चलाते हैं ! मेरे सामने यह उद्दण्डता ! मेरा यह अपमान ! (जोर से) आओ, नर्तकियो ! आओ। दौड़ो।

[नर्तकियाँ दौड़ कर आती हैं। फिर से होली का खेल आरम्भ होता है। राक्षस मस्तक नीचा किये हुए धीरे धीरे जाता है।]

परदा गिरता है

दूसरा दृश्य

स्थान—विपाशा (व्यास) के निकट एक जंगली मार्ग

समय—सन्ध्या

[एक भारतीय सैनिक के साथ चाणक्य का प्रवेश। भारतीय सैनिक की वेष भूषा वितास्ता तट के युद्ध के सैनिकों के सदृश है। चाणक्य का वेष बदला हुआ है। उसे पहचानना कठिन है। उसके श्याम जटाजूट हैं और लम्बी काली दाढ़ी। शरीर पर भस्म लगी है और कौपीन के अतिरिक्त और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है। बगल में मृग छाला है और हाथ में कमण्डल।]

चाणक्य—तो अलक्षेन्द्र के बाल काट डालने, कपड़े उतार फेंकने, भोजन तथा मदिरा तक छोड़कर दिन रात एक आसन से बैठे रहने का भी सेना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है ?

सैनिक—थोड़ा भी नहीं, गुरुदेव, सारे यवन सैनिक एक पैर भी आगे बढ़ने को प्रस्तुत नहीं। बात यह है कि वितास्ता तट के युद्ध से ही वे

हतोत्साह हो गये थे। फिर चन्द्रभामा और इरावती के बीच में तो कोई युद्ध नहीं हुआ, पर इरावती और विपासा के बीच फिर युद्धों का तांता बँध गया। लूट में कुछ मिला नहीं और कष्ट हुए अगणित। इस सब पर आपके आज्ञानुसार हम लोगों ने 'भविष्य में और भी अधिक कष्ट होंगे, तथा कुछ न मिलेगा' इन बातों का सारी सेना में खूब प्रचार किया है। गुरुदेव, इस समय का सेना का यह हठ तो प्रधानतः इस प्रचार का ही फल है।

चाणक्य—भविष्य में होने वाले कष्टों के सम्बन्ध में तुम लोगों ने क्या क्या कहा है?

सैनिक—आपके कथनानुसार हमने उन्हें विश्वास दिला दिया है कि मगध तक पंचनद से न जाने कितनी बड़ी बड़ी नदियाँ पार करनी होंगी।

चाणक्य——(मुस्कराकर) ठीक; और ?

सैनिक—जैसा आपने कहा था, उनसे यह भी कहा है कि मगध के आस पास सेरों बोझ की पानी की एक एक बूँद बरसती है और लगातार महीनों तक पानी की झड़ी लगी रहती है।

चाणक्य—बहुत अच्छा, और ?

सैनिक—आपने जो राक्षस और राक्षस-सेना की बात कही थी, वह भी उन्हें समझा दी है।

चाणक्य—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। और तुम्हें विश्वास है कि वे आगे न बढ़ेंगे ?

सैनिक—हमें तो पक्का विश्वास है, आर्य।

चाणक्य—देखो, सैनिक, तुम भारतीय हो। आर्यावर्त की गौरव रक्षा का उत्तरदायित्व केवल यहाँ के नरेशों पर नहीं, पर एक एक व्यक्ति पर है। किसी भी साधन द्वारा विदेशियों को देश से बाहर कर देना, उनके एक एक चिन्ह तक का यहाँ नाश कर डालना, यह तुम सबका प्रथम कर्त्तव्य, परम धर्म्म है। शशिगुप्त का उत्तरापथ का कार्य तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक तुम यहाँ से भी शत्रुओं के पैर न उखाड़ दो।

सैनिक—गुरुदेव, मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि जो कार्य आपने हमें सौंपा

है उसके सफल करने में हमें यदि अपने प्राणों की भी आहुति देनी पड़ेगी तो भी हम पीछे न हटेंगे।

[नेपथ्य में कुछ लोगों की बातचीत सुन पड़ती है।]

सैनिक—आर्य, कुछ यवन सैनिक इधर ही आ रहे हैं।

[चाणक्य और सैनिक का शीघ्रता से दाहिनी ओर प्रस्थान। बाईं ओर से कुछ यवन सैनिकों का प्रवेश।]

एक सैनिक—सिर के बाल काट डालना, कपड़े उतार फेंकना, भोजन तथा मदिरा तक छोड़कर दिन रात इस प्रकार बैठे रहना यह तो अपनी बात मनवा लेने के लिए राजराजेश्वर की पुरानी प्रणाली है, कोई नयी बात है?

दूसरा—हाँ, जब उन्होंने हमारे पुराने निर्दोष सेनापति क्लीटस का निर्दयता पूर्वक वध किया था, उस समय भी इसी प्रणाली का अवलम्बन किया था।

तीसरा—और जब तक हम लोगों ने यह निर्णय न दे दिया कि सम्राट सर्वथा निर्दोष हैं और सारा दोष सेनापति क्लीटस का था, अतः उसकी अन्त्येष्टि क्रिया सैनिक रीति से नहीं हो सकती, तब तक न उन्होंने खाया, न मदिरा को हाथ लगाया और न वस्त्र ही पहने।

चौथा—जो कुछ भी हो, भाई, इस बार उनकी यह प्रणाली सफल न होगी।

पाँचवाँ—हाँ, चाहे वे प्राण ही क्यों न दे दें, हम लोग एक पग भी आगे न बढ़ेंगे।

छठवाँ—हाँ, करें क्या? वर्षों हो गये, न देश के दर्शन हुए न घर के; न स्त्री को देखा, न बच्चों को; बढ़ो, बढ़े चलो, कहाँ तक? कोई सीमा भी है?

सातवाँ—चाहे ईरान की सीमा मिल गयी हो, इस देश की तो मिलने वाली है नहीं।

आठवाँ—फिर असुविधाओं का भी कोई ठिकाना है?

नवाँ—कोई नहीं कभी अग्नि की वर्षा होती है तो कभी पानी की।

आठवाँ—इतना पानी बरसते तो संसार में न कहीं देखा और न सुना। मगध के आस पास तो पाँच पाँच सेर की एक एक बूँद बरसती है और छः छः महीने ऐसे पानी की झड़ लगी रहती है।

नवाँ—जब आग बरसती है तब ऊपर आग और नीचे आग; दोनों के बीच में भुँजा करो। जब पानी बरसता है तब भी ऊपर पानी, नीचे पानी; उस पानी में बहा करो।

पहला—हाँ, इस विपाशा तक ही कितनी नदियाँ पार कर आये?

दूसरा—सुना नहीं, मगध तक तो एक सौ आठ और पार करनी होंगी।

तीसरा—फिर नदियाँ भी कैसी?

चौथा—समुद्र की भुजाएँ समझो।

पाँचवाँ—और कब तक छोटी रहेंगी, कब बड़ी हो जायँगी, इसका भी कोई ठिकाना नहीं।

छठवाँ—हाँ, कई बार तो पार करते करते बाढ आ जाती है।

सातवाँ—फिर कई स्थानों पर तो यही नहीं जान पड़ता कि थल है या जल।

छठवाँ—हाँ, कई स्थानों पर तो पानी में अन्न के पौधे तक होते हैं।

सातवाँ—फिर कहीं सिंह निकल पड़ता है और कहीं हाथी।

आठवाँ—और सर्प तो कब और कहाँ से निकल पड़ेगा, इसका कोई ठिकाना ही नहीं।

नवाँ—जो कुछ भी हो, अब तो घर चलेंगे।

पहला—फिर आगे बढने से लाभ ही क्या है?

दूसरा—अब तक तो कुछ नहीं हुआ।

तीसरा—धन तो जितना इस देश में है उतना कहीं दिखा नहीं।

चौथा—कहीं नहीं, इतना सोना, इतने रत्न, कहीं भी नहीं देखे।

पाँचवाँ—पर अपने किस काम के?

छठवाँ—किसी काम के नहीं। निर्धनों से युद्ध होता है और धनवानों से सन्धि हो जाती है।

सातवाँ—पचनद-नरेश से सन्धि न होती तो वहाँ बहुत मिलता ।

आठवाँ—पर, भाई, वहाँ तो हम हार गये थे । सन्धि न होती तो धन मिलना दूर रहा, प्राण भी चले जाते ।

छठवाँ—सुना, मगध में बहुत धन है ।

नवाँ—और वहाँ भी सन्धि हो गयी तो ?

दसवाँ—वहाँ सन्धि न होगी ।

नवाँ—सन्धि न हुई और हार गये तो ?

दसवाँ—हारेंगे भी नहीं ।

नवाँ—सन्धि भी न होगी और हारेंगे भी नहीं, यह तुम कैसे कह सकते हो ?

दसवाँ—सन्धि तो इसलिए न होगी कि पर्वतक महाराज सारे जंबूद्वीप के सम्राट होना चाहते हैं , मगध नरेश के रहते यह नहीं हो सकता; इसलिए वे सन्धि कदापि न होने देंगे । और हारेंगे इसलिए नहीं कि मगधेश जब नर्तकियों से ही हार जाते हैं तब हमसे कैसे जीतेंगे ?

नवाँ—पर, भाई, सुना है कि मगध का मत्री राक्षस है ।

दसवाँ—अर्थात् ?

नवाँ—इस देश में राक्षस नामक एक विचित्र प्रकार के जीव होते हैं । वे मनुष्यों को खा जाते हैं । उनका शरीर ऐसा होता है कि उस पर शस्त्र चलाओ तो शस्त्र तो टूट जाते हैं, पर उनके शरीर को कोई क्षति नहीं पहुँचती । मगध का मत्री स्वय राक्षस है और वह राक्षसों की एक बहुत बड़ी सेना तैयार कर रहा है, जो हमारे वहाँ पहुँचते ही हम सबको खा जायगी ।

दसवाँ—अरे, ये सब बाते हैं ।

नवाँ—फिर वही बात । यहाँ की बातें सब सच्ची निकलती हैं । तुमने जब यहाँ के हाथियों का वर्णन सुना तब तुम हाथी के सदृश पशु हो सकता है, यही नहीं मानते थे । फिर जब तुमने यह सुना कि यहाँ के हाथियों को मनुष्य के चीर डालने का एक विशेष प्रकार का अभ्यास होता है तब तुम उसकी हँसी उड़ाने लगे, कहने लगे पशु में इतनी बुद्धि कहाँ हो सकती है !

पर हाथी भी देख लिया और उन हाथियों ने किस प्रकार मनुष्यों को चीरा, यह भी देख लिया। अब मनुष्य खाने वाले राक्षसों को तुम नहीं मानते, यदि हम मगध तक पहुँचे तो देख लेना यदि एक भी लौट सकें, सब उन राक्षसों की भोजन-सामग्री हो जायँगे।

पहला—पर मगध पहुँचेंगे, तब तो ?

नवाँ—हाँ, तभी।

पहला—मगध तो अभी दूर है, यहाँ तो विपाशा पार करने वाले नहीं हैं।

दूसरा—कदापि, नहीं।

दसवाँ—यदि राजराजेश्वर अपने प्राण दे देंगे तो भी नहीं ?

तीसरा—चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय।

चौथा—अपने प्राण दूसरे के प्राण से सदा अधिक प्यारे लगते हैं।

पाँचवाँ—अरे, भाई, सब सेना का यही मत है। (दसवें की ओर संकेत कर) कदाचित् यही एक होंगे जो आगे बढ़ना चाहते हैं।

दसवाँ—जैसा सब करेंगे मैं भी वैसा ही करूँगा। मैं तो मगध के धन की बात भर बता रहा था।

छठवाँ—मगध के धन से भी हमें अपने प्राण अधिक प्यारे हैं।

सातवाँ—अवश्य। हम कदापि आगे न बढ़ेंगे।

आठवाँ—(जोर से) कदापि नहीं।

नवाँ—(और जोर से) चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय कभी नहीं।

[नेपथ्य में गान सुन पड़ता है।]

पहला—ये कुमारी आ रही हैं।

दूसरा—विचित्र लड़की है।

तीसरा—सुना, चाहे राजराजेश्वर और सारी सेना क्यों न लौट जाय, यह यहीं रहेगी।

चौथा—और शशिगुप्त से विवाह करेंगी।

पाँचवाँ—इतनी निर्भीक और इतनी वाचाल है कि सम्राट से भी नहीं डरती।

[गान की ध्वनि निकट आती है।]

छठवाँ—चुप चुप, वह निकट ही आ गयी।

[हेलन का गाते और ऊपर देखते हुए प्रवेश। वह एक पतंग उड़ा रही है। पतंग तो नहीं दिखती उसके हाथ में पतंग की डोर दिखती है, जो ऊपर तक गयी हुई है। उसे देख कर सैनिक उसका अभिवादन कर एक ओर सावधानी से खड़े हो जाते हैं। वह सैनिकों को देख मुस्कराकर सिर झुका उनके अभिवादन का उत्तर देती है, फिर ऊपर देखने लगती है। सैनिक भी ऊपर पतंग की ओर देखते हैं। हेलन का गाना चलता रहता है।]

गान

उड़, पतंग! छू बादल-छोर।

दूर नील निस्सीम गगन में छूटेगी बन्धन की डोर।
मन मानी उड़ान में उड़ना भोज पत्र के पंख पसार,
पर अनन्त पथ में इस तन का भी होवेगा दुःसह भार।
आभा के असीम सागर की पाकर, सजनी, एक तरङ्ग,
एक रङ्ग हो, एक रूप हो, कर लेना अपनापन भङ्ग।
उस प्रकाश के सागर में से लेकर एक किरण की कोर,
मिटते जग की अमिट कहानी लिख देना जब होवे भोर।

हेलन—(सैनिकों से, ऊपर की ओर देखते हुए) जानते हो, मैं क्या कर रही हूँ?

एक सैनिक—क्या, कुमारी!

हेलन—इस पतंग को यूनान भेज रही हूँ।

दूसरा—(कुछ आश्चर्य से) पतंग को यूनान भेज रही हैं!

हेलन—हाँ, पश्चिमी वायु है, यह आकाश मार्ग से वनों, पर्वतों, नदियों, समुद्रों सबको लाँघती हुई यूनान पहुँच जायगी।

तीसरा—इतनी जल्दी, कुमारी!

हेलन—क्यों नहीं? हमें तो पृथ्वी पर के प्राकृतिक अवरोधों से यहाँ तक आने में विलंब लगा। मेरी पतंग को आकाश मार्ग में वे अवरोध थोड़े ही मिलेंगे! (डोर को ढील देते हुए) देखते नहीं, कितनी जल्दी-जल्दी डोर बढ़ रही है और डोर के साथ मेरी पतंग आगे जा रही है। (कुछ रुककर)

इस पतंग के साथ मेरा एक पत्र भी यूनान जा रहा है, जिसमें मैंने यहाँ का सारा वृत्त, तुम लोगों के आगे न बढ़ने का निर्णय, राजराजेश्वर का हठ और मेरे आर्यावर्त में रहकर शशिगुप्त के साथ विवाह करने का निश्चय—सब कुछ लिख दिया है।

[सिल्यूकस का प्रवेश। उसे देख सैनिकों का अभिवादन कर प्रस्थान।]

सिल्यूकस—बेटी।

हेलन—(एक बार पिता की ओर देखकर फिर ऊपर देखते हुए) कहिए, पिताजी।

सिल्यूकस—मैं आज अन्तिम बार तुझे समझाने आया हूँ।

हेलन—(उसी प्रकार ऊपर देखते हुए) यही न कि मैं शशिगुप्त से विवाह करने के अपने निर्णय को परिवर्तित कर दूँ।

सिल्यूकस—हाँ, यही।

हेलन—पर क्यों ?

सिल्यूकस—वह हमारा शत्रु है, वह विद्रोही है।

हेलन—जब वह हमारा मित्र था तब मैं उससे इसलिए विवाह न कर सकती थी कि वह देश-द्रोही था। अब जब वह देश-प्रेमी हुआ तब मैं उससे इसलिए विवाह नहीं कर सकती कि वह हमारा शत्रु है। यह भी कोई बात है ?

सिल्यूकस—(अधीरता से) बेटी...बेटी !

हेलन—देखिए, पिताजी, यूनान और भारत, यवन और भारतीय, मित्र और शत्रु यह सब क्यों ! एक पृथ्वी, एक मानव समाज, सभी मित्र, यह क्यों नहीं ! जैसी यूनान की पृथ्वी है, वैसी ही भारतवर्ष की। यूनान में जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र और तारागण उदय तथा अस्त होते हैं, उसी प्रकार भारतवर्ष में। वहाँ जैसे पर्वत, वन, नदियाँ, सरोवर इत्यादि हैं, वैसे ही यहाँ भी। जैसे यवन मनुष्य हैं वैसे ही भारतीय। यवनों के भी एक सिर, दो नेत्र, एक नासिका, एक मुख, दो कर्ण, एक ग्रीवा एक वक्ष, एक उदर, दो भुजाएँ, दो पैर हैं, वैसे ही सब अंग भारतीयों के भी। फिर भारतीय यवनों से कम सुन्दर, कम वीर, कम सभ्य, कम त्यागी, कम सुसंस्कृत, कम विद्वान नहीं। और शशिगुप्त के सदृश तो मैंने एक भी यवन नहीं देखा।

सिल्यूकस—बेटी... बेटी... तू नहीं जानती कि तू क्या कह रही है... तू नहीं जानती कि तू क्या कर रही है !

हेलन—(ऊपर की ओर ही देखते तथा डोर को ढील देते हुए) मैं सब कुछ जानती हूँ, पिताजी, मैं अब बच्ची नहीं हूँ ।

सिल्यूकस—तू जानती है कि सम्राट तुझसे कितने अप्रसन्न हैं ? तू जानती है, वे क्या करने की शक्ति रखते हैं ?

हेलन—(एकाएक ऊपर से दृष्टि हटा सिल्यूकस को देखते हुए) पिताजी,... पिताजी, ..यह आप क्या कह रहे हैं ? आप मुझे कोई भी बात समझा दें, किसी भी बात के सम्बन्ध में मेरी भूल सिद्ध कर दें तो मैं तत्काल मान सकती हूँ । आपने मुझसे कहा था—देश-भक्त देश-द्रोही से विवाह नहीं कर सकता, मैं उसी समय मान गयी । मैंने शशिगुप्त को घृणा करना आरम्भ कर दिया था । परन्तु ..परन्तु... आप मुझे सम्राट या ससार में किसी का भय दिखाकर मुझसे कोई काम नहीं करा सकते । (दृढ़ता से) मैं जानती हूँ, पिताजी, सम्राट क्या कर सकते हैं । वे मेरी बोटी बोटी कटवा सकते हैं, वे क्रूरतम उपायों से मेरा वध करवा सकते हैं...परन्तु...परन्तु.. परन्तु, पिताजी, जिस बात को मैं ठीक समझती हूँ, उससे वे मुझे विमुख नहीं कर सकते । वे मुझे मरवा सकते हैं, पर मुझे विवश कर मेरा विवाह पर्वतक अथवा अन्य किसी से नहीं कर सकते । वे मेरे शव को यूनान ले जा सकते हैं, पर मेरे जीते जी मुझसे बल पूर्वक आर्यावर्त नहीं छुड़वा सकते । (और दृढ़ता से) मैं यहीं रहूगी, पिताजी, और आततायी यवनों का विद्रोही परन्तु देश-प्रेमी शशिगुप्त से, केवल शशिगुप्त से विवाह.. (डोर टूट जाती है । ऊपर देखते हुए) आह ! आपकी इस पंचायत में मेरी पतग की डोर टूट गयी । अब वह यूनान कैसे पहुँचेगी ?

[जल्दी जल्दी डोर समेटते हुए हेलन सामने की ओर दौड़ती है । सिल्यूकस सिर नीचा किये सोचते सोचते उसके पीछे पीछे जाता है ।]

परदा उठता है

तीसरा दृश्य

स्थान—विपाशा (व्यास) के तट पर पर्वतक का शिविर

समय—सन्ध्या

[पीछे की ओर दूर पर विपाशा का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, जो सूर्य की किरणों में चमक रहा है। नदी के इस पार दोनों ओर दूर दूर तक सेना के डेरे दिखते हैं। निकट ही बाँई ओर पर्वतक के डेरे का कुछ बाहरी भाग दिख पड़ता है। दृश्य प्रायः वैसा ही है जैसा दूसरे अंक का पाँचवाँ दृश्य था; अन्तर इतना ही है कि उस दृश्य में सिकन्दर के डेरे के सामने के मैदान में बहुत सी आसंदियाँ रखी थीं। इस दृश्य में पर्वतक के डेरे के बाहर का मैदान रिक्त है। इस मैदान में चाणक्य अपने नये साधु के वेष में टहल रहा है। पर्वतक का सैनिक वेष में दाहिनी ओर से प्रवेश। पर्वतक को देख कर चाणक्य ठहर जाता है।]

पर्वतक—(चाणक्य के निकट आकर) अब प्रभाव पड़ रहा है, आर्य।

चाणक्य—हर्ष की बात है, महाराज, मुझे विश्वास था कि आपके कथन का अलक्षेन्द्र पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा।

पर्वतक—आपके कथनानुसार आज तो मैंने यह भी कह दिया कि इस प्रकार की अनमनी सेना के साथ यदि मगध पहुँच भी गये तो भी कोई लाभ न होगा, क्योंकि यह सवाद राक्षस को मिल जायगा और वह इससे पूरा लाभ उठाकर युद्ध न भी करता होगा तो भी करेगा।

चाणक्य—इस कथन का कैसा प्रभाव पड़ा?

पर्वतक—सबसे अधिक। थोड़ी ही देर में वे अपना निर्णय मुझे सूचित करेंगे। (कुछ रुककर) पर, आर्य, अलक्षेन्द्र हैं बड़े विलक्षण मनुष्य। मदिरा की उनको ऐसी लत है कि घड़ी भर भी वे उसके बिना नहीं रह सकते, परन्तु चार दिन हो चुके, खाना पीना तो दूर रहा, सोना विश्राम लेना भी अलग, पर उन्होंने मदिरा तक को हाथ से नहीं छुआ।

चाणक्य—मैं जानता हूँ, महाराज, अलक्षेन्द्र असाधारण व्यक्ति हैं।

पर्वतक—(कुछ रुककर) आपको यह विश्वास तो है न, कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, यवन सेना आगे बढ़ना स्वीकार न करेगी?

चाणक्य—(मुस्करा कर) साम, दाम, दण्ड, भेद सभी का उपयोग तो निष्फल हुआ, महाराज, अलक्षेन्द्र के बाल काट डालने, वस्त्र फेंक देने, निराहार तथा निर्जल दिन रात चार दिनों तक एक ही आसन पर बैठे रहने तक का सेना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

पर्वतक—यदि एक ओर अलक्षेन्द्र विलक्षण पुरुष हैं, तो दूसरी ओर आप क्या कम विचित्र हैं ?

चाणक्य—मैं...मैं, महाराज !

पर्वतक—हाँ, आप, आर्य।

चाणक्य—परन्तु मैं बिना देशभक्त पर्वतक महाराज और उनकी देशभक्त सेना के क्या कर सकता था ! उधर आप के सैनिकों ने यवन सैनिकों को ठीक किया और इधर आप अलक्षेन्द्र को ठीक कर रहे हैं।

पर्वतक—परन्तु यह सब हो तो रहा है, आर्य चाणक्य के कारण ही न ?

[दोनों टहलने लगते हैं।]

चाणक्य—आपने अलक्षेन्द्र को यह तो अच्छी प्रकार समझा दिया है न, कि उत्तरापथ का मार्ग उसके लिए उपयुक्त न होगा और उसे सिन्ध तथा मकरान के रास्ते लौटना चाहिए ?

पर्वतक—अच्छी प्रकार आर्य।

[दोनों कुछ देर चुपचाप टहलते रहते हैं।]

चाणक्य—महाराज, यदि अलक्षेन्द्र लौट गया तो उसके लौटते ही हमें पूरी पूरी तैयारी कर अविलंब इन देशद्रोही गणतन्त्रों और मगध पर आक्रमण करना होगा। आर्यावर्त में न तो ये छोटे छोटे गणतंत्र रखे जा सकते हैं और न विलास प्रिय मगधेश।

पर्वतक—(चाणक्य की ओर देखते हुए) अच्छा।

चाणक्य—अलक्षेन्द्र के लौटने पर भी भारत-विजय की उसकी तृष्णा का अन्त थोड़े ही हो जायगा, महाराज। वह शीघ्र से शीघ्र भारतवर्ष पर फिर आक्रमण करेगा और यह दूसरा आक्रमण इस आक्रमण से भी भयानक होगा। इसका सामना करने के लिए हमें अभी से सारा आयोजन कर लेना अनिवार्य है।

पर्वतक—(कुछ सोचते हुए) आप ठीक कहते हैं, आर्य।

चाणक्य—इस आयोजन की महानता देखते हुए यह तब तक नहीं हो सकता, महाराज, जब तक सारे भारतवर्ष में एक साम्राज्य की स्थापना न हो।

पर्वतक—(उसी प्रकार सोचते हुए) यह भी ठीक है

चाणक्य—और यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक देशद्रोही गणतन्त्रों और विलासी मगधेश की सत्ता का अन्त न किया जाय।

[पर्वतक गंभीरता से कुछ सोचने लगता है। चाणक्य उसकी ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—आप अच्छी प्रकार सोच लें, महाराज, विदेशियों के भविष्य के आक्रमण का सामना बिना इस आयोजन के एक असभव कल्पना है। यदि हम इस आयोजन में सफल हुए तो हमारे देश का स्थान ससार में सर्वोच्च हो जायगा। जो इस आयोजन को सफल बनावेंगे उनका नाम ससार के इतिहास में अजर अमर होकर रहेगा। और यदि यह आयोजन न हुआ तो हम विदेशियों का सामना ही न कर सकेंगे और यदि किया भी तो हमें सफलता न मिलेगी। देश शताब्दियों के लिये दासता की शृंखलाओं में जकड़ जायगा। देशवासियों पर अभूतपूर्व अत्याचार होंगे। (कुछ ठहर कर) महाराज, इस भारतीय साम्राज्य की स्थापना आपके और शशिगुप्त के सहयोग से ही हो सकती है। मगध और गणतंत्रों की पराजय के पश्चात् उस साम्राज्य का यदि कोई भी अधिपति, सारे भारत का यदि कोई भी चक्रवर्ती सम्राट हो सकता है, तो, आप!

पर्वतक—और शशिगुप्त...शशिगुप्त आर्य?

चाणक्य—शशिगुप्त! शशिगुप्त वीर होते हुए भी अभी अल्पवयस्क है। इतने बड़े साम्राज्य के संचालन के लिए जो क्षमता, जो अनुभव चाहिए वह उसमें नहीं।

पर्वतक—फिर भी...फिर भी ..आर्य, उन्होंने अब तक जो कुछ किया है, भविष्य में भी वे जो कुछ करेंगे उसके लिए उन्हें कोई उचित पद तो मिलना ही चाहिए। (कुछ रुक कर) आर्य, मेरे पुत्र का वितास्ता तट के युद्ध में वध हो गया। यदि आप मुझे ही भारतीय साम्राज्य का सम्राट बनाना चाहते हैं तो शशिगुप्त को युवराज का पद दीजिए।

चाणक्य—श्रेष्ठ, महाराज, श्रेष्ठतम प्रस्ताव है।

[दाहिनी ओर से शीघ्रता पूर्वक सैनिक वेष में एक भारतीय सैनिक का प्रवेश वह पर्वतक का अभिवादन करता है।]

सैनिक—सम्राट अलक्षेन्द्र पधार रहे हैं, महाराज।

[सैनिक का प्रस्थान । चाणक्य जाने लगता है]

पर्वतक—अब आपका जाना ठीक न होगा, आर्य, उन्हें सन्देह हो जायगा, आप ठहरिए, वे आपको पहचान न सकेंगे।

[पर्वतक दाहिनी ओर आगे बढता है, सिकन्दर का दाहिनी ओर से प्रवेश। उसके सिर के बाल कटे हुए हैं। कमर में वह एक छोटा सा कपडा लपेटे है; शेष शरीर वस्त्र से रहित है। मुख अत्यन्त म्लान हो गया है।]

सिकन्दर—(पर्वतक से जल्दी जल्दी जैसे किसी प्रकार पिंड छुड़ाना चाहता हो) मैंने आपकी सम्मति पर ध्यान देकर विचार किया, महाराज, मैं आपसे सहमत हूँ। एक बार यूनान हो ही आता हूँ। उत्तरापथ से न जाकर सिन्ध और मकरान के मार्ग से जाऊँगा। पिथान तो सिन्ध में है ही. उसे सूचना भेज देता हूँ और सेना में भी इस निर्णय की घोषणा कराये देता हूँ।

[सिकन्दर बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये वापस जाने लगता है, पर उसी समय उसकी दृष्टि चाणक्य पर पड़ती है और वह रुक जाता है।]

सिकन्दर—(चाणक्य को दूर से देखते हुए पर्वतक से) यह कौन है, महाराज ?

पर्वतक—एक भारतीय साधु, सम्राट।

सिकन्दर—(उसी प्रकार चाणक्य को देखते हुए) क्या कुछ भविष्य बता सकता है ?

[सिकन्दर चाणक्य की ओर बढ हाथ जोडता है। चाणक्य चुपचाप खडा रहता है। पर्वतक भी उसके पीछे पीछे जाता है।]

सिकन्दर—देव, आप भविष्यवक्ता भी हैं ?

चाणक्य—(अत्यन्त गम्भीर स्वर से) आर्यावर्त का प्रत्येक साधु त्रिकाल-दर्शी होता है।

सिकन्दर—अनेक भारतीय और यवन साधुओं के दर्शन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, भगवन, आपके दर्शन से भी कृतार्थ हुआ। मेरे भविष्य में अब क्या है, देव ?

चाणक्य—(उसी प्रकार के स्वर से) अजन्मा जन्म लेता है, जन्म हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है, प्रत्येक जीव का जो भविष्य है, वही तेरा भी है।

सिकन्दर—परन्तु...परन्तु.. देव, प्रत्येक जीव इस संसार में कुछ न कुछ करने को आता है। कोई महान जीव होते हैं, वे ही लघु। भविष्यवक्ताओं ने मेरे सम्बन्ध में अनेक भविष्य-वाणियाँ की हैं।

चाणक्य—(उसी प्रकार के स्वर में) कैसी ?

सिकन्दर—उन्होंने कहा है मैं दैवी कार्यों के लिए अवतीर्ण हुआ हूँ। मेरे पिता यवन-देवता ज़्यूस हैं। योग पड़ा है कि मैं विश्व-विजय करूँगा; और विश्व-विजय कर मानव समाज का कल्याण।

चाणक्य—मिथ्या . मिथ्या !

सिकन्दर—(आश्चर्य से) ये भविष्य वाणियाँ मिथ्या हैं ?

चाणक्य—सर्वथा मिथ्या ! तू किसी देवता का नहीं पर दैत्य का पुत्र है। देवपुत्र वीर होते हुए भी सौम्य होते हैं, दयालु होते हैं, तू वीर है तो क्या हुआ, अत्याचारी है, क्रूर है। तू दैवी कार्य के लिए अवतीर्ण नहीं हुआ है, मानव-समाज का कल्याण तेरे द्वारा नहीं होगा। तेरी विजय का योग पंचनद से समाप्त हो गया, अब तो सदा तेरी पराजय होगी।

[सिकन्दर अत्यधिक क्रुद्ध हो पर्वतक की कमर से उसका खड्ग खींच लेता है और चाणक्य पर प्रहार करने के लिए झपटता है। पर्वतक बीच में आकर उसका हाथ पकड़ लेता है। चाणक्य अट्टहास करता है।]

पर्वतक—यह आप क्या कर रहे हैं, सम्राट, यह आप क्या कर रहे हैं ? यह देश दार्शनिकों, साधुओं और वीरों की भूमि है। इस देश में दार्शनिक और साधु अवध्य हैं।

सिकन्दर—(क्रोध से काँपते हुए) परन्तु...परन्तु...महाराज, यह कैसा साधु है ?

पर्वतक—कैसा भी क्यों न हो, सम्राट, साधु तो है। साधु पर प्रहार नहीं किया जा सकता। (कुछ रुककर) चलिए, आप अपने शिविर में चलिए। चार दिनों से अन्न का एक कण, जल की एक बूँद आपके उदर में नहीं गयी है। क्रोध नहीं, आपको विश्राम की आवश्यकता है, सम्राट।

[पर्वतक सिकन्दर के हाथ से अपना खड्ग ले, उसे अपने कोष में डाल, सिकन्दर का हाथ पकड़ उसे दाहिनी ओर से बाहर ले जाता है। सिकन्दर क्रोध से चाणक्य

को घूरते हुए जाता है। चाणक्य मुसकराते हुए इधर उधर घूमता है। पर्वतक का पुनः प्रवेश।]

पर्वतक—(मुस्कराते हुए) आपने तो अनर्थ ही कर दिया था, आर्य!

चाणक्य—(मुस्कराते हुए) ऐसा?

पर्वतक—अवश्य।

चाणक्य—(कुछ विचारते हुए) परन्तु मैं समझता हूँ यह आवश्यक था, महाराज।

पर्वतक—कैसे?

चाणक्य—उसके अवतार होने, और वह विश्व विजय करने आया है, इन दोनों विश्वासों पर आघात होना आवश्यक था। इससे वह निर्बल हो जायगा। (कुछ रुककर) मैंने न तो अलक्षेन्द्र की इस भेंट की आशा की थी, न उसे देखने के पश्चात् ही यह सोचा था कि उससे क्या कहूँगा, पर उसकी बात सुनते ही अन्तःप्रेरणा ने ये बातें मेरे मुख से निकाल दीं। (फिर कुछ रुककर) अच्छा, महाराज, आपकी सफलता पर बधाई दे अब मैं सिन्ध की ओर प्रस्थान करता हूँ।

पर्वतक—अब आप सिन्ध पधारेंगे?

चाणक्य—हाँ, महाराज, यहाँ का कार्य समाप्त हो गया और वहाँ अब कार्य आरम्भ करना है। सिन्ध-निवासियों, विशेषकर ब्राह्मणों पर पिथान ने लोमहर्षण अत्याचार किये हैं। ब्राह्मणों के मृत शरीरों से सिन्ध की भूमि पट गयी है। सिन्ध-मार्ग से भागते हुए ये यवन कुशल पूर्वक यूनान न पहुँच सकेंगे। उत्तरापथ से भी कहीं भीषण विद्रोह सिन्ध में होगा। वहाँ तो मुझे अभूतपूर्व सफलता मिलेगी। सिन्ध के मृत ब्राह्मणों का तर्पण यवन रक्त से होगा।

[पर्वतक चाणक्य को प्रणाम करता है। चाणक्य दोनों हाथ उठा आशीर्वाद दे दाहिनी ओर से जाता है। पर्वतक का बाँई ओर अपने डेरे में प्रवेश।]

दृश्य बदलता है

चौथा दृश्य

स्थान—सिन्धु नदी के तट पर शशिगुप्त का शिविर

समय—प्रातःकाल

[दूर पर पीछे की ओर सिन्धु का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, जो सूर्य की किरणों में चमक रहा है। नदी के इस पार दोनों ओर दूर दूर तक शशिगुप्त की सेना के तृणनिर्मित झोपड़े दिखते हैं। निकट ही बाँई ओर शशिगुप्त के झोपड़े का कुछ बाहरी भाग दृष्टिगोचर होता है। (शशिगुप्त और वीरभद्र का प्रवेश।) शशिगुप्त सैनिक वेष में है। वह लोहे का सुवर्ण मंडित शिरस्त्राण और कवच पहने है तथा आयुधों से भी सुशोभित है। वीरभद्र केवल कौपीन धारण किये है।]

वीरभद्र—राजन्, यह संवाद सत्य है ?

शशिगुप्त—स्वयं आर्य चाणक्य का पत्र है, आर्य। अलक्षेन्द्र कदाचित् सेना-सहित सिन्ध की ओर चल भी दिया होगा।

वीरभद्र—आर्य चाणक्य कहीं भी जाकर असफल हों, यह हो ही नहीं सकता। राजन्, पर्वतक महाराज को अलक्षेन्द्र से विमुख कर देना और अलक्षेन्द्र की सेना में इस प्रकार का विद्रोह करा देना ये दोनों कार्य वे ही कर सकते थे।

शशिगुप्त—इसमें सन्देह नहीं, आर्य !

वीरभद्र—और हमारे विद्रोह की सफलता का इससे बड़ा कौन सा प्रमाण हो सकता है कि अलक्षेन्द्र का साहस उत्तरापथ से लौटने तक का नहीं हुआ।

आपने कैसी अभूतपूर्व वीरता दिखायी है, राजन्, सप्ताहों तक आप घोड़े की पीठ से न उतरे। आपके एक एक बाण ने शत्रुदल के सैनिकों की पंक्तियों की पंक्तियाँ कदली वृक्षों के सदृश बेध दीं। आपके शल्य और खड्ग के प्रहारों ने शत्रुदल के मस्तकों को कदुकों के सदृश उछाल उछाल कर फेंक दिया। कहाँ...कहाँ आपका सा कार्य देखने को मिलता है ; देखने को क्या, सुनने और पढ़ने को भी नहीं।

शशिगुप्त—(कुछ देर सोचते हुए) आप जानते हैं इस प्रकार के कार्य का क्या कारण है ?

वीरभद्र—(शशिगुप्त की ओर देखते हुए) क्या कारण है ? राजन् ?

शशिगुप्त—एक विशेष प्रकार की भावना का स्रोत, कभी भी, क्षण मात्र को भी मद पड़ने अथवा सूखने वाला स्रोत नहीं, अविरत प्रवाह वाला स्रोत।

वीरभद्र—भावना का स्रोत ?

शशिगुप्त—हाँ, आर्य, इस भावना का स्रोत कि कुछ निर्माण हो रहा है, कुछ किया जा रहा है, कुछ बनाया जा रहा है। निर्माण की भावना के इस स्रोत के कारण न पल मात्र को मुझे थकावट आती और न क्षण मात्र को मेरा उत्साह भग होता।

वीरभद्र—(गदगद स्वर से) धन्य है आपको, राजन्, धन्य है। आपकी यह पर्वत सी दृढ़ता, समुद्र सी गहराई, आकाश सी निर्मलता !

[दोनों टहलने लगते हैं और कुछ देर कोई नहीं बोलते।]

शशिगुप्त——आर्य चाणक्य तो सिन्ध में भी विद्रोह कराने के लिए सिंध चले गये।

वीरभद्र—और हमें भी उनकी आज्ञानुसार आज ही सिन्ध की ओर प्रस्थान करना है।

शशिगुप्त—वे चाहते हैं, आर्य, कि सिन्ध और मकरान के मार्ग से एक भी यवन भागने न पावे।

वीरभद्र—ठीक।

शशिगुप्त—परन्तु, परन्तु, आर्य, भागते हुए ..भागते हुए ..भागते हुए यवनों पर भी प्रहार...

पौरमन—इससे क्या, राजन्। (गाता है।)

गान

बनी भस्म से ज्वाला शेष
कर देगी प्रलयङ्कर पावक-ताण्डव का उन्मेष।
सदय हृदय का पा करुणा जल,
अभ्यन्तर में उफन उबल गल,
फूट पड़ेगा ज्वाला का दल,
पाकर अवसर, पा आवेश।
हो प्रचण्ड साहस का गर्जन,
हुंकारों से रिपुगण-तर्जन,
कोमल द्रवित दया का वर्जन,
वारित हो विनाश-सन्देश।
असि-अञ्जलि से शोणित तर्पण,
काल-कवल में अरिदल-अर्पण,
वीरों के चरित्र का दर्पण
यही धर्म, यह नय आदेश।

[धीरे धीरे दोनों जाते हैं।]

दृश्य फिर बदलता है

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—मकरान का मरुस्थल

समय—मध्याह्न

[दूर पीछे की ओर असीमित मरुस्थल दिखता है, जो मध्याह्न के सूर्य के प्रखर प्रकाश में चमक रहा है। दोनों ओर दूर दूर तक रेत के टीले दिख पड़ते हैं। निकट ही बाँई ओर एक ऊँचा सा बालू का टीला है। सारी पृथ्वी पर रेत ही रेत दृष्टिगोचर होती है। कुछ यवन सैनिकों का दाहिनी ओर से दौड़ते हुए प्रवेश। सबके मुख अत्यंत सूखे हुए हैं, उन पर उद्विग्नता और म्लानता का पूर्ण साम्राज्य है। सब सैनिक खड़े होकर सामने की ओर देखते हैं।]

एक सैनिक—(सामने देखते हुए) नहीं, नहीं है।

दूसरा—(सामने ही देखते हुए) हाँ, केवल मृगतृष्णा ही थी।

तीसरा—(सामने ही देखते हुए) हाँ, पानी नहीं, वह भी बालू ही है।

चौथा—(बैठते हुए) ओह! मुझसे तो अब खड़ा नहीं रहा जाता।

पाँचवाँ—(बैठते हुए) किसी से नहीं रहा जाता, भाई।

[प्राय सभी बालू में बैठ जाते हैं।]

छठवाँ—खाना भी नहीं मिलेगा' और पानी भी नहीं।

सातवाँ—(चारों ओर देख कर) यहाँ तो खजूर के वृक्ष भी नहीं दिखते कि उनके गूदे से ही थोड़ा बहुत सहारा मिले।

आठवाँ—फिर लौटो, जो पानी का गढ़ा छोड़ आये हैं उसी में से पियेंगे।

पहला—पर, भाई, उसमें तो डूब कर एक सैनिक मर गया है।

दूसरा—हाँ, उसकी सड़ी हुई लाश तक हम लोगों ने देखी है।

तीसरा—और उस सड़ान के कारण उस गढ़े के पानी में दुर्गन्ध कितनी थी।

चौथा—हाँ, उसको भी पिया तो भी मरेंगे।

आठवाँ—बिना पिये क्या जीवित रह सकते हैं?

पाँचवाँ—कभी नहीं।

छठवाँ—प्यास से तड़प तड़प कर मरने की अपेक्षा उस गढ़े का पानी पीकर ही मरना अच्छा है।

[कुछ सैनिक उठ कर दाहिनी ओर लौटते हैं।]

पहला—(चिल्लाकर) अरे, भाई, मानो, मानो, उस पानी को मत पियो।

[जाने वालों में से कोई नहीं लौटता। ठहरे हुओं में से कुछ लेट जाते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लेटे हुए में से एक—(उठते हुए) भाई, बालू तप गई है, लेटा भी नहीं जा सकता।

लेटा हुआ दूसरा—(उठते हुए) हाँ, मैं भी झुलस गया।

बैठे हुए में से एक—(खड़े होते हुए) लेटना क्या, इस तपी हुई रेत में बैठना भी कठिन है।

बैठा हुआ दूसरा—(खड़े होते हुए) बहुत कठिन।

[कुछ लेटे हुए और बैठे जाते हैं। कुछ बैठे हुए खड़े हो जाते हैं। कुछ लेटे रहते हैं। कुछ बैठे रहते है।]

लेटा हुआ एक—(जोर से चिल्लाकर उठते हुए) अरे मुझे तो बिच्छू ने काटा, बिच्छू ने !

[वह सैनिक चिल्लाता है। लेटे हुए सब एकाएक उठ बैठते और बिच्छू ढूँढते तथा उसे मारते हैं। जिसे बिच्छू ने काटा वह कराहता रहता है।]

खड़ा हुआ एक—कहाँ तक भोगेंगे, भाई ?

बैठा हुआ एक—जहाँ तक प्राणपखेरू उड़ न जायँगे।

बैठा हुआ दूसरा—पर करना क्या ? सम्राट और सारे सेनापति रसद और पानी के लिए प्राणपन से प्रयत्न न करते हों, यह तो है नहीं।

खड़ा हुआ दूसरा—यह आपने अच्छी कही, प्रयत्न करते हैं, सिन्ध और मकरान के इस मार्ग से आये ही क्यों ?

खड़ा हुआ तीसरा—तो उत्तरापथ से जाते।

बैठा हुआ तीसरा—अवश्य।

खड़ा हुआ पहला—वहाँ विद्रोही मारते।

खड़ा हुआ दूसरा—भूख और प्यास से, रेत और सूर्य से जिस प्रकार तड़प तड़प कर यहाँ मर रहे हैं, उसकी अपेक्षा तो लड़ भिड़कर वीरों के सदृश मरना कहीं अच्छा था।

बैठा हुआ दूसरा—और इस मार्ग में क्या युद्ध नहीं हुए ?

खड़ा हुआ तीसरा—हाँ, यहाँ भी वही हुआ। चाणक्य ने ही आकर तो सिन्ध में विद्रोह कराया और फिर शशिगुप्त भी आ पहुँचा।

बैठा हुआ दूसरा—और मल्लों के युद्ध सा युद्ध तो पंचनद में भी न हुआ था।

बैठा हुआ तीसरा—हाँ, स्वयं सम्राट आहत हुए। आज तक वक्षस्थल का घाव भरा नहीं है।

खड़ा हुआ चौथा—सच बात तो यह है कि हम लोगों ने मगध न जाकर भूल की।

बैठा हुआ पहला—यह सब जाने दो, अब क्या करना यह प्रश्न है।

खड़ा हुआ चौथा—करना क्या, मरना। सुना नहीं, इस मरुस्थल में भी शशिगुप्त और चाणक्य पीछा करने वाले हैं।

खड़ा हुआ पांचवाँ—एक भी यवन यूनान न पहुँच सकेगा, एक भी नहीं।

खड़ा हुआ पहला—न जाने किस मुहूर्त में इस देश की ओर प्रस्थान किया था।

बैठा हुआ पहला—हाँ, भाई, विचित्र देश है। जब आये थे तब वनों से डरे थे, वन-वृक्षों से घबड़ाते थे, वर्षा और नदियों से भयभीत हुए थे। अब लो, न वन है, न एक भी वृक्ष है, न वर्षा है और न नदी।

खड़ा हुआ पहला—(आगे बढते हुए) बढो, आगे बढ़ो, चलो।

[कुछ खड़े हुए सैनिक सामने की ओर बढते हैं। कुछ बैठे हुए खड़े हो जाते हैं। इसके विपरीत कुछ खड़े हुए बैठ जाते हैं। आगे बढ़ने वालों में से दो कुछ दूर आगे जाकर छटपटा कर गिरते हैं। बैठे हुए सब इस दृश्य को देख खड़े हो जाते हैं और सबके सब सामने की ओर दौड़ते हैं।]

एक—(जाते हुए) चक्कर आ गया होगा

दूसरा—(जाते-हुए) इसी प्रकार तो मरते हैं

[सब सैनिक गिरे हुए सैनिकों के पास पहुँचते हैं। पहुँचने वालों में से एक और गिरता है। हेलन का प्रवेश। उसके साथ दो सैनिक और हैं, जो दो गधों को हाँक रहे हैं। गधों में से एक पर पानी की मशक है और दूसरे पर मिट्टी के बर्तन। हेलन के बाल फैले हुए हैं। मुख अत्यधिक म्लान है और आँख के चारों ओर श्यामता आ गयी है।]

एक सैनिक—(हेलन की ओर देख प्रसन्नता से) लो, हमारी सच्ची प्राणदायी आ गयीं।

दूसरा—(प्रसन्नता से) हाँ, कुमारी पानी लेकर आ गयीं; (और जोर से) कुमारी पानी लेकर आ गयीं; अब भय नहीं।

[कुछ सैनिक हेलन की ओर दौड़ते हैं। हेलन सामने के सैनिकों को देख शीघ्रता से उस ओर जाती है। वह गिरे हुए सैनिकों के मुख में मिट्टी के बर्तन से स्वयं पानी डालती है। शेष सैनिक पानी पीने के लिए टूट पड़ते हैं।]

हेलन—(चिल्लाकर) थोड़ा थोड़ा पीना, थोड़ा थोड़ा पीना।

[उसकी बात कोई नहीं सुनता। गिरे हुए सैनिकों में से दो तो उठ बैठते हैं, पर एक छटपटा कर मर जाता है। पानी पीने वालों में से दो और गिरते हैं। सिल्यूकस का प्रवेश। वह सैनिक वेष में है, परन्तु उसका मुख भी अत्यधिक उतरा हुआ है। पिता को आते देख हेलन उसके निकट आती है।]

सिल्यूकस—(सैनिकों की ओर देखते हुए) और कुछ मरे!

हेलन—(लंबी साँस लेकर) हाँ, पिताजी, यह तो नित्य का धंधा ही हो गया है।

सिल्यूकस—(हेलन की ओर देखते हुए) परन्तु, बेटी, तू यदि दिन रात इस प्रकार परिश्रम करेगी तो तेरा क्या होगा?

हेलन—जो कुछ भी हो, पिताजी, क्षुधितों, दलितों को क्या यों ही काल के मुख में छोड़ मैं विश्राम करूँ?

सिल्यूकस—(लंबी साँस लेकर) यह तो ठीक है, बेटी, किन्तु ..

हेलन—किन्तु परन्तु कुछ नहीं, पिताजी। स्त्री के लिए आरत को देख चुपचाप रह जाना यह कदाचित् असंभव बात है।

[दोनों कुछ देर चुप रहकर सामने के सैनिकों की ओर देखते हैं।]

हेलन—राजराजेश्वर आज कैसे हैं?

सिल्यूकस—वक्षस्थल के घाव में पीड़ा तो वैसी ही है, पर तू जानती ही है कि बड़ी जीवट के मनुष्य हैं। इतनी पीड़ा होते हुए भी आगे बढ़ गये हैं।

हेलन—घोड़े पर?

सिल्यूकस—हाँ, घोड़े पर ही, (कुछ रुककर) उनके बिदा होने के पूर्व एक भयानक संवाद और मिला है।

हेलन—क्या?

सिल्यूकस—सेनापति नियारकस के साथ जलमार्ग द्वारा जो सेना सिन्धु नदी से बिदा हुई थी, वह भी नष्ट हो गयी।

हेलन—(आश्चर्य से) वह भी नष्ट हो गयी ?

सिल्यूकस—हाँ, वह भी नष्ट हो गयी।

हेलन—तो इस देश के स्थल और जल दोनों ने ही हमारा नाश कर डाला। (कुछ रुककर) पिताजी, यह सवाद कौन लाया।

सिल्यूकस—स्वयं सेनापति नियारकस। (लंबी साँस लेकर) बेटी, नियारकस की जो दशा हो गयी थी, उसका वर्णन नहीं हो सकता। धूप से काला मुख। शरीर अस्थि पजर। कपड़े फटे हुए चिथड़ों के रूप में। क्या कहूँ।

[नेपथ्य में दूर पर गान सुनायी देता है, जो धीरे धीरे निकट आने लगता है।]

गान

बढ़े चलो ! हे वीर।
घसके धरा, धमक सह पग की,
उड ढाँके रज नभ को मग की,
चौंक चेतना जाये जग की,
सुन गर्जन रणधीर !
हो प्रचण्ड दृग में क्रोधानल,
तृण सम गज हय जावें जल जल,
उखड़ समूल गिरे रिपु का दल,
पा फुंकार समीर।
बढे ज्वार सी द्रुतगति भीमा,
हो विध्वंस शत्रु की सीमा,
रक्त-प्रवाह न होवे धीमा,
काँपे दिशा अधीर।

हेलन—ओह ! जान पड़ता है वे आततायी यहाँ भी पहुँच गये। (कुछ रुककर) पिताजी, मैं आप लोगों को भारत की सीमा तक ही पहुँचाने के लिए आयी थी। मैंने आपसे कहा था, सीमा से मैं लौट कर शशिगुप्त से विवाह करूँगी, परन्तु ..परन्तु, पिताजी, मैंने अपने निर्णय को बदल दिया है। पुरुष, चाहे वे किसी भी देश के हों, सभी आततायी होते हैं। (कुछ

रुककर) पिताजी, यवनों ने इस देश पर आक्रमण कर अन्याय किया था। उन्होंने इस देश के निवासियों पर भी दारुण से दारुण अत्याचार किये, परन्तु अब भागते हुये यवनों पर भारतीयों, उस नर-श्रेष्ठ शशिगुप्त तक, के ये आक्रमण अत्याचार नहीं तो क्या हैं? (फिर कुछ रुककर) पिताजी, मैं शशिगुप्त से विवाह न करूँगी; मैं किसी से विवाह न करूँगी; अपने पूर्व निश्चय के अनुसार मैं कुमारी ही ..

[भागते हुए कुछ यवन सैनिकों का प्रवेश। उनके पीछे शशिगुप्त और उसके साथ भारतीय सैनिक आते हैं। युद्ध होता है। सिल्यूकस भी खड्ग निकाल कर युद्ध करता है। पहले आये हुए यवन सैनिकों में से कुछ भाग जाते हैं और कुछ लौट कर इस युद्ध में यवन सैनिकों का साथ देते हैं। सिल्यूकस और शशिगुप्त का सामना और दोनों का युद्ध होता है। सिल्यूकस का खड्ग टूटता है। हेलन शीघ्रता से शशिगुप्त और सिल्यूकस के बीच में आती है।]

हेलन—(शशिगुप्त की ओर देखते हुए दृढ़ता और घृणा से) हाँ, मारो, शशिगुप्त, मारो, तुमने तो एक एक यवन का, घर लौटते हुए यवन का भी वध करने का संकल्प किया है न। मारो, मारो, शशिगुप्त, मारो!

[शशिगुप्त चुपचाप खड़ा रहता है।]

हेलन—क्यों, रुक गये? मारो, मारो!

[शशिगुप्त मन्त्र-मुग्ध की भाँति खड़ा रह जाता है। शशिगुप्त और हेलन एक दूसरे को और अपने को भूले हुए के समान देखते हैं। सिल्यूकस कभी शशिगुप्त और कभी हेलन की ओर देखता है।]

यवनिका

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—राजा पर्वतक की राजधानी में पर्वतक के प्रासाद की एक दालान।

समय—सन्ध्या

[कुम्भी और भरणी से युक्त स्तंभों पर दालान की छत है। पीछे की भित्ति

रंगी हुई है, पर उसमें कोई द्वार नहीं है। एक सुवर्ण-मण्डित शयन पर पर्वतक बैठा हैं। उसी शयन के निकट एक सुवर्ण-मण्डित आसंदी रखी हुई है। उस पर चाणक्य बैठा है। पर्वतक उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए तथा आभूषण भी पहने हैं। चाणक्य ने फिर अपनी साधारण वेष-भूषा कर ली है।]

पर्वतक—मैं ही क्या, आज सारा आर्यावर्त एक स्वर से कहता है कि अलक्षेन्द्र के सदृश पराक्रमी विजेता को आपकी बुद्धि और शशिगुप्त की वीरता देश से बाहर निकाल सकी। आप दो, केवल आप दो के कारण भारत विदेशियों के पद-दलन से बचा।

चाणक्य—महाराज, मेरे और शशिगुप्त के लिये देश-भक्त पंचनद-नरेश की इस प्रशंसा से अधिक गौरव की अन्य कोई वस्तु नहीं हो सकती।

पर्वतक—मैं ही नहीं, आर्य, हिमालय से रामेश्वर और पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक का सारा देश आज एक स्वर से यही बात कह रहा है।

चाणक्य—परन्तु इस महान अनुष्ठान के सच्चे प्रवर्तक तो आप हैं, महाराज। यदि आपने वितास्ता के तट पर विदेशियों के दाँत खट्टे न किये होते, यदि आपकी जय और यवनों की पराजय के कारण अलक्षेन्द्र का छाया हुआ आतंक ध्वस न हो जाता, यदि आपने विपाशा-तट पर अलक्षेन्द्र को जाने के लिये तैयार न किया होता, तो हमें कभी सफलता मिल सकती थी ?

पर्वतक—आपकी इस प्रशंसा को मैं आशीर्वाद मानता हूँ, आर्य।

चाणक्य—(कुछ ठहरकर) महाराज, आपके महान और हमारे थोड़े से प्रयत्न का जो फल निकला है, वह स्थायी नहीं।

पर्वतक—जानता हूँ, आर्य।

चाणक्य—महाराज, हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी अलक्षेन्द्र जीवित बैबीलोन पहुँच गया है। सिल्यूकस का भी संहार न हो सका ; और भी कई यवन सेनापति बचकर निकल गये। मैं समझता हूँ, ये सब फिर से तैयारी कर इस देश पर शीघ्र ही आक्रमण करेंगे। अपनी पराजय का प्रतिकार लिये बिना इन्हें चैन न पड़ेगी।

पर्वतक—मानता हूँ, और अपने पूर्व विचारानुसार मैं शशिगुप्त के साथ

गणतन्त्रों और मगध पर तत्काल आक्रमण करने को प्रस्तुत हूँ। मैंने तो सेना को मगध यात्रा के लिये तैयार होने की आज्ञा भी दे दी है।

चाणक्य—(प्रसन्नता से) इससे अधिक हर्ष की मेरे लिए और कोई बात नहीं हो सकती। (कुछ रुककर) एक निवेदन और करूँ ?

पर्वतक—निवेदन ! आज्ञा दीजिए, गुरुदेव।

चाणक्य—इस समय आप भारत के उच्चतम नरेश हैं। आपकी दृष्टि से भी शशिगुप्त ने देश का थोडा बहुत कार्य किया है। आपको उसके सार्वजनिक स्वागत करने की कृपा करनी चाहिए।

पर्वतक—अवश्य, अवश्य। मै उनका राज-सभा मे सार्वजनिक स्वागत करूँगा।

चाणक्य—अनुग्रह। और इसके पश्चात् आप दोनों मिलकर पहले गण-तन्त्रों को समाप्त कर मगध पर आक्रमण करेंगे।

पर्वतक—ठीक।

चाणक्य–साधु ! साधु !

[प्रतिहार का प्रवेश।]

प्रतिहार—(अभिवादन कर) जय हो, महाराज, यवन-सेनापति पिथान पधारे हैं और श्रीमान के दर्शन के इच्छुक हैं।

पर्वतक—(चाणक्य से) अब यवन-आयोजन का भी पता लग जायगा।

चाणक्य—अवश्य, तो मुझे आज्ञा हो ; आप सेनापति पिथान से बात कर लें, इस समय मैं आपका और समय न लेना चाहूँगा। पिथान की बात के पश्चात् मंत्रणा की आवश्यकता हो तो मुझे बुला लीजिए। (खडा होता है।)

पर्वतक—(खडे होते हुए) जैसी इच्छा। (अभिवादन करता है।)

[चाणक्य दोनों हाथ उठा कर आशीर्वाद दे, जाता है।]

पर्वतक—(प्रतिहार से) सेनापति पिथान को भेज दो।

[प्रतिहार का अभिवादन कर प्रस्थान। पर्वतक इधर उधर टहलता है। पिथान का सैनिक वेष में प्रवेश। वह पर्वतक का अभिवादन करता है। पर्वतक अभिवादन का उत्तर देता है। पर्वतक शयन पर और पिथान आसंदी पर बैठते हैं।]

पर्वतक—आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। आप कुशल-पूर्वक तो हैं? मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ? कहिए, क्या आज्ञा है, सेनापति?

पिथान—आपके मगध-आक्रमण का वृत्त सुन कर मैं सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

पर्वतक—हाँ, मगध पर तो मैं शीघ्र ही आक्रमण करने वाला हूँ।

पिथान—यही तो मैंने सुना। आप जानते हैं, महाराज, सम्राट अलक्षेन्द्र की भारत से लौटने के पूर्व यही सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

पर्वतक—बहुत अच्छी प्रकार जानता हूँ, बिदा होते समय तक मैं उनके साथ था।

पिथान—आपके पश्चात् मैं तो मकरान तक उनके साथ रहा। उन्होंने बार बार शीघ्र ही भारत लौटने के लिये कहा है।

पर्वतक—यह भी मैं जानता हूँ, विदा होते समय मुझसे भी उन्होंने यह बात कही थी।

पिथान—ऐसी दशा में उनके लौटने तक यदि यह आक्रमण न किया जाय तो क्या कोई अनुचित बात होगी?

पर्वतक—बहुत।

पिथान—कैसे?

पर्वतक—मगधेश नंद के विलासों तथा उसकी क्रूरताओं के कारण मगध की प्रजा अत्यन्त आकुल हो उठी है। उसके राज्य का अन्त तो अविलंब करना होगा।

पिथान—(कुछ सोचते हुए) ऐसी दशा में यवन जो सहायता दे सकते हैं, उसे स्वीकार किया जाय।

पर्वतक—यवन! इस समय यवनों से क्या सहायता मिल सकती है?

पिथान—क्यों? मैं तत्काल बैबीलोन जा सकता हूँ। वहाँ से यवन सेना आ सकती है।

पर्वतक—इसमें तो विलंब होगा, सेनापति। मैं आपकी कृपा के लिए अत्यन्त अनुगृहीत हूँ, परन्तु मैं समझता हूँ कि बिना इस सहायता के भी मैं सफल हो जाऊँगा।

पिथान—(कुछ सोचते हुए) शशिगुप्त की सहायता से ? इसीलिए क्या अभी चाणक्य आये थे, महाराज ? विद्रोही शशिगुप्त और सम्राट अलक्षेन्द्र दोनों से आपकी मैत्री न चलेगी, महाराज। शशिगुप्त के नाश की राज-राजेश्वर ने प्रतिज्ञा की है, आप सम्राट के निकटतम मित्रों मे से हैं। सम्राट भारत लौटेंगे, अवश्यमेव लौटेंगे। आपने सारे विषय पर भली-भाँति विचार कर लिया होगा ?

पर्वतक—(खड़े होकर कुछ रुखाई से) पंचनद-नरेश को क्या करना चहिए और क्या नहीं, इसे वह भली भाँति जानता है। (जोर से) प्रतिहार ! प्रतिहार !

[प्रतिहार का प्रवेश।]

पर्वतक—सेनापति पिथान को सुविधा पूर्वक अतिथि-आलय में ठहरा दो।

[पिथान खडा होता है और अभिवादन कर प्रतिहार के साथ जाता है। पर्वतक का पिथान के अभिवादन का उत्तर दे दूसरी ओर प्रस्थान। तीन भृत्यों का प्रवेश। दो शयन को और एक आसदी को उठाकर ले जाते हैं।]

परदा उठना है

दूसरा दृश्य

स्थान—बैबीलोन में अलक्षेन्द्र का डेरा

समय—रात्रि

[बहुत विशाल डेरा है। डेरे के तीन ओर की कपड़े की भित्ति दृष्टिगोचर होती है। पीछे की भित्ति में कोई द्वार नहीं है। दोनों ओर की भित्तियों के सिरों पर एक एक द्वार है जिन पर रेशमी परदे हैं। पीछे की भित्ति के निकट बाईं ओर सिकन्दर का पलग है ; उस पर स्वच्छ शैया। इस शैया पर रुग्ण सिकन्दर गले तक एक दुकूल ओढे लेटा हुआ है। वह कृश होगया है। पलंग के निकट ही एक ऊँची चौकी पर मदिरा के सुवर्ण पात्र तथा औषधियाँ रखी हैं। डेरे में कई शयन और आसंदियाँ हैं। एक आसंदी पर अपनी साधारण वेष भूषा में हेलन बैठी हुई गा रही है।]

गान

गुनगुनाते आज क्यों कुछ अनमने से तार ?
क्या विषम स्वर अनसुने थे,
या, न, सुन मन ने गुने थे.
विकल सी झर,
श्रवण में भर,
कौन लय निर्देश करती काँपती झङ्कार ?
सिहर तू आल्हाद भोले,
देखकर अवसाद रो ले,
अथ में सृजन,
इति है विजन,
श्यामता से शून्य में यह आँकता संसार।
पद प्रलय की प्रखर भाषा,
सकुचती मृदु मदिर आशा,
नयन का जल,
हृदय से ढल,
क्या बुझा पाता कभी भी दहकते अङ्गार ?

सिकन्दर—ठीक है, कुमारी, ठीक है, यह संसार यथार्थ में असार है। (कुछ रुककर) मेरा भारतवर्ष का आक्रमण और तो हर दृष्टि से असफल रहा ; सर्वत्र ही मैं भारतवासियों का कोप-भाजन बना ; जगह जगह मेरी हार हुई ; गान्धारों ने मेरे पैर घायल किये, मल्लों ने मेरा वक्षस्थल, जिसका घाव आज तक नहीं भरा है , परन्तु, कुमारी, एक दृष्टि से मेरी भारतयात्रा सफल भी हुई।

हेलन—किस दृष्टि से, सम्राट ?

सिकन्दर—आर्यावर्त के आर्य और बौद्ध सन्तों ने मुझे इस संसार की असारता का ज्ञान करा दिया।

हेलन—(कुछ सोचते हुए) मुझे भी उन्हीं सन्तों से यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, सम्राट् ; किन्तु आपके और मेरे ज्ञान में अन्तर है।

सिकन्दर—कैसा, कुमारी ?

हेलन—इस ज्ञान के पश्चात् मेरे हृदय में तो कोई इच्छा ही नहीं रही, सम्राट, परन्तु आप तो अभी भी नित नये विजय के आयोजनों पर विचार किया करते हैं, फिर से भारत पर शीघ्र से शीघ्र आक्रमण करने की बात सोचते हैं। इसीलिए संसार और विशेषकर भारत का मानचित्र सदा अपने पास ही रखते हैं। उसी को देखना, सारे संसार को जीत उसका सम्राट किस प्रकार बना जाय, यही आपके दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न है। इस अस्वस्थ दशा में, जब आपका शरीर विश्राम के अतिरिक्त और कुछ भी करने के योग्य नहीं, आपके मस्तिष्क को पल भर विश्राम नहीं, वह इसी चिन्तन में व्यग्र है।

सिकन्दर—(कुछ सोचते हुए) तुम ठीक कहती हो, कुमारी, तुम्हारे और मेरे ज्ञान में यह अन्तर अवश्य है। (कुछ रुककर) इसका एक कारण है।

हेलन—क्या, सम्राट ?

सिकन्दर—ऑरेकलों का कथन। उनका मुझे यवन ज्यूस का पुत्र बताना, उनका यह कहना कि संसार में मेरा अवतार ऐसी विजय करने के लिए हुआ है; जैसी अब तक के इतिहास में किसी ने नहीं की।

हेलन—भारत में इस प्रकार की पराजय के पश्चात् भी ऑरेकलों की बातों पर आपको विश्वास है ?

सिकन्दर—(गम्भीरता से सोचते हुए) भारत के पराभव से इस विश्वास पर ठेस अवश्य पहुँची है, विपाशा तट पर एक भारतीय साधु ने सभी ऑरेकलों और भारतीय आर्य तथा बौद्ध साधुओं के विरुद्ध भविष्यवाणी की थी, उसका भी हृदय पर प्रभाव पड़ा है, किन्तु इतने पर भी, कुमारी, अपने देवपुत्र होने, तथा संसार में मैं महान कार्य के निमित्त ही आया हूँ, इस बात पर पूर्ण अविश्वास हो गया है, यह नहीं। पचनद में मेरी पराजय के पश्चात् पर्वतक से जिस प्रकार सन्धि हो गयी, उससे मेरे मन में बार बार यह उठा करता है कि भारत के इस पराभव में भी कोई न कोई दैवी रहस्य हो सकता है; भविष्य की महान जय के उचित आयोजन करने के लिए ही सभव है, यह पराजय हुई हो।

हेलन—परन्तु, सम्राट, इस असार संसार को जीत कर ही क्या लाभ होगा?

सिकन्दर—(कुछ सोचते हुए) एक ओर यह विचार भी उठता है और दूसरी ओर इस संसार में अभूतपूर्व विजय के लिए मैं अवतीर्ण हुआ हूँ यह विश्वास है। कभी संसार की असारता इस विश्वास को तुच्छ बताती है और कभी यह विश्वास संसार की असारता के ज्ञान को ही भुला देता है। (कुछ रुककर) मानता हूँ, कुमारी, मानता हूँ, तुम्हारे और मेरे ज्ञान में अन्तर है, महान अन्तर है। (फिर कुछ रुककर) और और, कुमारी, जब नेत्रों के सामने शशिगुप्त और उसके साथियों के चित्र घूमते हैं, जब मेरे कानों में उस अर्द्धनग्न आर्य साधु वीरभद्र के गीतों की प्रतिध्वनि गूँजने लगती है, तब ...तब तो मैं संसार-विजय का आयोजन, ससार की असारता का ज्ञान, सब कुछ भूल जाता हूँ ; एक केवल एक बात से सारा हृदय, समस्त मस्तिष्क, शरीर का एक एक परमाणु भर जाता है।

हेलन—किस बात से, सम्राट?

सिकन्दर—शशिगुप्त से किस प्रकार प्रतिकार लूँ? (कुछ ठहरकर) क्यों, कुमारी, एक प्रश्न का उत्तर दोगी?

हेलन—प्रश्न सुनने पर कह सकती हूँ।

सिकन्दर—अभी भी तुम्हारे हृदय में शशिगुप्त के प्रति किसी प्रकार का प्रेम रह गया है?

हेलन—(लबी साँस लेकर) सम्राट, इस असार ससार में मेरा न किसी पर प्रेम है और न मैं किसी से द्वेष ही करती हूँ।

[सिल्यूकस का प्रवेश]

सिल्यूकस—(अभिवादन कर) सेनापति पियान भारतवर्ष से आये हैं, सम्राट का स्वास्थ्य ठीक हो तो दर्शन किया चाहते हैं।

सिकन्दर—मेरा स्वास्थ्य चाहे कैसा ही हो, भारतवर्ष के समाचार जानने को मैं सदा प्रस्तुत रहता हूँ। आप उन्हें शीघ्र ले आवें।

[सिल्यूकस का प्रस्थान और पियान के साथ प्रवेश। पियान अभिवादन करता है।]

सिकन्दर—(अभिवादन का उत्तर देकर) कहो, कब आये, सेनापति ? कुशल पूर्वक तो हो ? बैठो, पिथान, बैठो, सिल्यूकस।

[दोनों आसंदियों पर बैठ जाते हैं।]

पिथान—अभी अभी आ रहा हूँ, सम्राट। आपका स्वास्थ्य कैसा है; बहुत अच्छा तो नहीं दिखता ?

सिकन्दर—हाँ, बहुत अच्छा तो नहीं है। भारत में जो घाव वक्षस्थल में लगा था, वह अब तक अच्छा नहीं हो रहा है; और ज्वर आ गया है। कहो, भारत के क्या समाचार हैं ?

पिथान—कुछ अच्छे समाचार नहीं हैं सम्राट।

सिकन्दर—सो तो मेरे भारत लौटने तक कहाँ से होंगे। कोई नयी बात है ?

पिथान - एकदम नयी, सम्राट।

सिकन्दर—(उत्सुकता से) ऐसा क्या ?

पिथान—पर्वतक और शशिगुप्त में मैत्री हुई है।

सिकन्दर—(उत्तेजना से) पर्वतक और शशिगुप्त में मैत्री हुई है ?

पिथान—हाँ, सम्राट, और दोनों मिलकर मगध पर आक्रमण करने वाले हैं।

सिकन्दर—(और भी उत्तेजित होकर बैठते हुए) दोनों मिलकर मगध पर आक्रमण करने वाले हैं ?

पिथान—हाँ, सम्राट, दोनों की सेनाओं ने आर्यावर्त के गणतन्त्रों का नाश कर डाला है और अब तक तो मगध की ओर प्रस्थान भी कर दिया होगा।

[सिकन्दर का मुख अत्यधिक क्रोध से लाल हो जाता है। शरीर काँपने लगता है। वह काँपते हुए हाथों से अपने तकिये के नीचे से भारतवर्ष का मानचित्र निकाल, उसे फैला कर ध्यान पूर्वक देखने लगता है। सिल्यूकस, पिथान और हेलन, एक टक उसकी ओर देखते है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

सिकन्दर—(अत्यधिक क्रोध से) पर्वतक का यह विश्वासघात ! (कुछ रुककर दाँत पीसते हुए) शशिगुप्त...शशिगुप्त ..

[फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

सिकन्दर—(एकाएक तकिये पर गिरते हुए) आह ! आह ! हृदय में इतनी पीड़ा !

[सिल्यूकस पिथान और हेलन शीघ्रता से पलँग के निकट पहुँचते और सिकन्दर को देखते हैं ।]

हेलन—(शीघ्रता से जाते हुए) मैं चिकित्सक को लाती हूँ । (प्रस्थान ।)

सिकन्दर—(मर्राये हुए स्वर में, इधर उधर करवट लेते हुए) सिल्यूकस ! पिथान !

सिल्यूकस—आज्ञा, सम्राट ।

पिथान—आज्ञा, राजराजेश्वर ।

सिकन्दर—(तडपते हुए) मै मैं.. कदाचित् जा रहा हूँ । . देखो... देखो...भारत...भारत . विजय किये बिना चैन न लेना । पर्व...पर्वतक . से पूरा प्रतिकार...पूरा प्रतिकार...लेना ..और...शशिगुप्त शशिगुप्त को तो इस प्रकार की मौत मारना...जिस प्रकार...जिस प्रकार...आज पर्यन्त किसी को न मारा हो ।...शशि...शशि...शशिगुप्त . ...

[सिकन्दर की तडपन और हिलना डुलना एकाएक बन्द हो जाता है । सिल्यूकस और पिथान निकट जाकर उसे ध्यानपूर्वक देखते हैं । हेलन का शीघ्रता से चिकित्सक को लिए हुए प्रवेश । दोनों दौड़कर पलँग के निकट आते है ।]

सिल्यूकस—(मर्राये हुए रुँधे हुए स्वर में) चिकित्सक, सम्राट चल दिये ..चल दिये...चिकित्सक ..चल दिये । (उत्तेजना से) अन्त में हमें आज्ञा दे गये हैं ..आज्ञा दे गये हैं भारत-विजय करने के लिए । . पर्वतक और शशिगुप्त...पर्वतक और शशिगुप्त से प्रतिकार लेने के लिए । शशिगुप्त का इस प्रकार वध करने के लिए जिस प्रकार...जिस प्रकार वध आज पर्यन्त किसी का न हुआ हो । (भारत का मानचित्र उठा उसे देखते हुए) मै...मै .. सम्राट की अन्तिम इच्छा ..अन्तिम इच्छा का . अक्षरशः अक्षरशः पालन करूँगा । उसी से . उसी से उनकी आत्मा को स्वर्ग में शान्ति मिल सकती है ।

[चिकित्सक, पिथान और हेलन कभी मृत सिकन्दर और कभी भारत का मानचित्र देखते हुए सिल्यूकस की ओर देखते हैं ।]

परदा गिरता है

तीसरा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र के निकट एक जगली मार्ग

समय—प्रदोष

[चाणक्य का शकटार के साथ दाहिनी ओर से प्रवेश। शकटार की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है। वह गेहुँए रङ्ग का ऊँचा पूरा व्यक्ति है, परन्तु बहुत दुबला। शरीर की सारी अस्थियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सिर मूँछें और दाढी के कुछ केश श्वेत हो गये हैं। वह श्वेत सूती उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं। मस्तक तथा भुजाओं पर भस्म के त्रिपुण्ड लगे हैं। वक्षस्थल पर मोटा यज्ञोपवीत भी धारण है। उसके बगल में दो कुशासन दबे हुए हैं।]

शकटार—(चारों ओर देखकर) यहीं राक्षस ने मिलने को कहा है, आर्य !

चाणक्य—(चारों ओर देखकर) अच्छा।

शकटार—अब तुम लौट जाओ। मैं उनसे सारी बातें कर तुम्हें सूचना दूँगा।

चाणक्य—अच्छी बात है, पर देखो, आर्य शकटार, तुम, राक्षस और मैं तीनों तक्षशिला में सहपाठी रहे हैं। तुम और मैं दोनों ही राक्षस की प्रकृति से परिचित हैं। राक्षस कभी भी नद के विरुद्ध होगा, इसकी मुझे आशा नहीं।

शकटार—मुझे भी नहीं है, आर्य, केवल प्रयत्न करता हूँ। राक्षस नद के संग भी रहा तो भी नंद का आज रात्रि को सहार होकर ही रहेगा। आज पूर्णिमा है और मेरे प्रतिकार की पूर्णाहुति हुए बिना मुझे अब विश्राम नहीं मिल सकता।

चाणक्य—नद को उसके दुष्कर्म का फल मिलना ही चाहिए, तुम्हारे सात पुत्रों के वध का प्रायश्चित नद को करना ही होगा, परन्तु साथ ही वह दूसरा कार्य भी तुम्हें आज ही कर डालना है।

शकटार—हाँ, हाँ, वह भी आज ही हो जायगा। चन्द्रकला पर्वतक महाराज को बहुत पसन्द आयी है। वे मुझसे कहते थे स्त्रियाँ वीरों के मनोरजन की सामग्री हैं। उन्होंने मुझे आज रात्रि के लिए दो काम सौंपे हैं। शशिगुप्त के शिविर में शशिगुप्त की हत्या कराना और चन्द्रकला को उनके

शिविर में भिजवाना। वे क्या जाने कि शकटार उनसे अधिक देशभक्त है और शकटार शशिगुप्त का वध नहीं करा सकता। पूर्णचन्द्र तो जीवित रहेगा, पर चन्द्रकला को प्राप्त कर पर्वतक अवश्य चन्द्रलोक को पहुँच जायँगे। वे क्या जानें कि चन्द्रकला विषकन्या है।

चाणक्य—तो भारत का भविष्य आर्य शकटार के कन्धों पर रख चाणक्य विदा लेता है।

शकटार—तुम निश्चिन्त होकर जाओ, तुमने तो तक्षशिला विश्वविद्यालय में अपने निर्णयों के अनुसार बड़े बड़े कार्य किये हैं, क्या शकटार इतना भी न कर सकेगा ?

चाणक्य—मेरे कार्यरूपी मन्दिर के शिखर पर कलश तुम्हारे बिना नहीं चढ सकता, बन्धु।

शकटार—जब तक यह कलश न चढेगा, शकटार के जीवन का एक एक पल उसके लिए भारी रहेगा, आर्य चाणक्य।

चाणक्य—तो विदा।

शकटार—विदा, बन्धु।

[दोनों एक दूसरे का आलिंगन करते हैं। चाणक्य जिधर से आया उधर ही को जाता है। शकटार एक आसन बिछा कर बैठता और दूसरी को निकट रख लेता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। कुछ देर के पश्चात् दूसरी ओर से राक्षस का प्रवेश। राक्षस को देख शकटार खड़े हो उस ओर बढता है। राक्षस भी शकटार को देखता है और दोनों दौड़ कर एक दूसरे का आलिंगन करते हैं। कुछ देर दोनों उसी प्रकार खड़े रहते हैं। फिर अलग होकर आसनों पर बैठते और एक दूसरे को एकटक देखते रहते हैं।]

राक्षस—(शकटार की ओर ही देखते हुए) तुम में कितना परिवर्तन हो गया, आर्य शकटार।

शकटार—तुम मुझे जीवित देख रहे हो, यही क्या आश्चर्य की बात नहीं है ?

राक्षस—(लंबी साँस लेकर) आश्चर्य की बात ! हाँ, कह सकते हो। बारह वर्ष का कदाचित् एक युग बीत गया। तुम कहाँ थे, यही न ज्ञात था। आज जब तुम्हारा पत्र मिला ··

शकटार—तुम चौंक पड़े होगे, क्यों ?

राक्षस—चौंका तो नहीं, पर... (रुक जाता है ।)

शकटार—पर ?

राक्षस—(कुछ रुककर) क्या कहूँ; तुमसे मिलने का तो हर्ष हुआ, इतना आनन्द, आर्य, जितना कदाचित् जीवन में दो चार बार ही हुआ होगा, परन्तु तुम्हारे दुःखों का स्मरण कर उस हर्ष के साथ ही हृदय विषाद से भी भर गया ।

शकटार—तुम्हें भी मेरे दुःखों का स्मरण आ गया, आर्य राक्षस ?

[राक्षस सिर झुका लेता है । शकटार एकटक राक्षस की ओर देखता है ।]

शकटार—तुम्हें भी मेरे दुःखों का स्मरण कर विषाद हुआ, यह जानकर हर्ष हुआ, आर्य । तुम्हारा सहपाठी रहा हूँ, तुम्हारे स्वामी ने मेरे एक नहीं सात सात निर्दोष पुत्रों का वध किया है, एक युग के पश्चात् मेरा पत्र पाकर तुम्हें विषाद होना ही चाहिए था, आर्य !

राक्षस—(धीरे धीरे सिर उठा कर) मैं तुम्हारे सामने अत्यन्त लज्जित हूँ, बन्धु; मेरे पास क्षमा-याचना के लिये भी साधन नहीं ।

शकटार—पर जाने दो, जाने दो उस बात को । वह तो पुरानी बात हो गयी । तुमने स्वामि भक्ति के कारण सहपाठी के दुःखों को भी विस्मृत कर दिया; यह क्षम्य हो सकता है, पर अब तो तुम्हें देश और स्वामी के बीच में चुनाव करना है ।

राक्षस—(लंबी साँस लेकर) यह प्रश्न भी आज ही मेरे सामने नहीं आया है ।

शकटार—तो यह भी पुराना हो गया, क्यों ?

राक्षस—जब अलक्षेन्द्र का उत्तरापथ पर आक्रमण हुआ था, तब आर्य चाणक्य ने मुझे लिखा था कि भारत के सभी नरेशों को मिलकर उसका सामना करना चाहिए । मैंने बहुत प्रयत्न किया, आर्य, कि महाराज नंद उस आयोजन में भाग लें, परन्तु...परन्तु...

शकटार—परन्तु उस कुल-कलंक, उस विलास-प्रिय, उस निकम्मे नद ने कुछ न किया । देशभक्त राक्षस मंत्री अपने तक्षशिला के सारे आयोजनों को विस्मृत कर अपने देशद्रोही नरेश का मुँह देखते रह गये ।

[राक्षस कोई उत्तर न देकर सिर झुका लेता है। उसका मुख एकदम म्लान हो जाता है। शकटार एकटक राक्षस की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।

शकटार—(कुछ देर के पश्चात्) आर्य, तुम्हारी स्वामि-भक्ति सीमा को पार कर गयी है। स्वामि-भक्ति बुरी वस्तु नहीं, परन्तु सीमा के बाहर जाने से अच्छी वस्तु भी बुरी हो जाती है। तुम्हारी इस स्वामि-भक्ति का क्या परिणाम हुआ है, यह तो देखो। वह तो अलक्षेन्द्र की सेना ने ही आगे बढना अस्वीकृत कर दिया, नहीं तो इस देश की क्या दशा होती?

राक्षस—(धीरे धीरे सिर उठाते हुए) मानता हूँ, बहुत बुरी होती।

शकटार—और यदि नंद मगध के सिंहासन पर रहा तो बहुत शीघ्र वही होगा, जो होते होते रुक गया है।

राक्षस—अर्थात्?

शकटार—अलक्षेन्द्र मगध-विजय की प्रतिज्ञा करके गया था। उसकी मृत्यु अवश्य हो गयी है, किन्तु वह भारत-विजय को अपनी अन्तिम अभिलाषा कह, यह कार्य अपने सेनापति सिल्यूकस को सौंप गया है। बैबीलोन के चाणक्य के भेदियों ने वहाँ का सारा संवाद उनके पास भेजा है। सिल्यूकस शीघ्र ही भारत पर आक्रमण करेगा। मगध सकट से बच नहीं सकता और मगध-विजय का अर्थ आज भारत-विजय होता है।

[राक्षस फिर चुप होकर सिर झुका लेता है। शकटार एकटक राक्षस की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

शकटार—(कुछ देर पश्चात्) मैं जानता हूँ, नद को सुधारने के लिए तुमने कितने प्रयत्न किये। मैं जानता हूँ कि चाणक्य के पत्रों को पाकर नंद को सचेत कर देश की रक्षा के लिए तुमने कितने उद्योग किये, परन्तु, आर्य, नंद इतना पतित हो गया है कि उसका सुधार सभव ही नहीं। एक ऐसी सीमा होती है जहाँ तक पहुँचने के पहले ही सुधार हो सकता है, परन्तु नंद उस सीमा का उल्लघन कर चुका है। विलासिता और क्रूरता दोनों के उस मिश्रण का सुधार असंभव कल्पना है। (कुछ रुककर) ऐसे स्वामी...ऐसे स्वामी की भक्ति, आर्य! फिर देश-भक्ति और स्वामि-भक्ति इन दोनों को भी तो तोलना होगा।

[राक्षस कोई उत्तर न दे उसी प्रकार सिर झुकाये रहता है। शकटार एकटक राक्षस की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

शकटार—(कमर में छिपी हुई एक छुरिका को निकाल कर राक्षस के सम्मुख रखते हुए) आर्य, मगध पर पर्वतक और शशिगुप्त की सेना के आक्रमण होने में अब बिलंब नहीं है, परन्तु मै पुनः भारतीय युद्ध का दृश्य नहीं देखना चाहता। मैं नहीं चाहता भारतीय आपस में युद्ध कर निर्बल हो जायँ और विदेशी न आते हों तो भी निर्बल भारत को देख यहाँ आ पहुँचें। शकटार यह छुरिका लाया है। उसके जीवित रहते भारतीय भारतीय से युद्ध करें, भारतीय रक्त बहे यह सभव नहीं। या तो तुम शकटार को आज्ञा दो कि वह नंद का वध कर अपने सातों पुत्रों के वध का प्रतीकार ले या इस छुरिका से शकटार का वध करो।

[राक्षस उसी प्रकार मूर्तिवत बैठा रहता है। शकटार राक्षस को ओर देखता है। फिर कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

शकटार—बोलो, आर्य, कुछ तो बोलो।

राक्षस—(धीरे धीरे सिर उठाते हुए लबी साँस लेकर) क्या बोलूँ बन्धु ?

शकटार—निर्णय तो करना ही होगा।

राक्षस—एक बात मैं कह देता हूँ कि मगध वाले कोई भीषण युद्ध के लिए तैयार नहीं हैं।

शकटार—यह कैसे ?

राक्षस—महाराज नंद का विश्वास है कि मगध की रक्षा ईश्वरीय शक्ति स्वयं करती है। उसी रक्षक के कारण अलक्षेन्द्र की सेना लौट गयी। पर्वतक और शशिगुप्त की सेना भी इसी प्रकार लौट जायगी, इसका उन्हें पक्का विश्वास है। महाराज ने युद्ध की कोई तैयारी नहीं की है। हाँ, मैंने अवश्य की है, और मेरे जीवित रहते महाराज नंद पर मैं संकट न आने दूँगा।

शकटार—(उत्तेजित होकर) तो तुम स्वामि-रक्षक और देशभक्षक ही रहोगे ?

राक्षस—(एकाएक सिर उठाकर उत्तेजना से) तो तुम क्या चाहते हो, शकटार, क्या चाहते हो ? तुम क्या यह चाहते हो कि जिन हाथों ने नन्द

को गोद में खिलाया है, वे ही हाथ नंद का वध करें ? तुम क्या यह चाहते हो कि जिस मुख ने नद को आशीर्वाद देने के अतिरिक्त कभी एक कठोर शब्द भी नहीं कहा, वही मुख उसके वध करने की तुम्हें आज्ञा दे ? तुम क्या यह चाहते हो कि जिस मस्तिष्क ने सदा उसका शुभ-चिन्तन ही किया है, वही उसके वध का षड्यन्त्र रचे। तुम क्या यह चाहते हो कि जो हृदय सदा स्वामि-भक्ति से ओत-प्रोत रहा है, वही आज स्वामि-द्वेषी हो जावे ? तुम क्या चाहते हो. आर्य शकटार, तुम क्या चाहते हो ? (उसका मुख एकदम नीचे झुक जाता है।)

शकटार—(गंभीर स्वर से) अब मैं कुछ नहीं चाहता, आर्य, कुछ नहीं। मुझे ज्ञात होगया कि नद के सदृश तुम्हारा सुधार भी असंभव है। तुम्हें इस समय जो कष्ट हो रहा है, उसे भी मैं जानता हूँ, आर्य, परन्तु कर्त्तव्य-पथ फूलों का न होकर काँटों का पथ है। क्या किया जाय समष्टि के सम्मुख व्यष्टि का कोई स्थान नहीं चाहे वह व्यष्टि कोई भी क्यों न हो। देश-भक्ति के सम्मुख व्यक्ति-भक्ति को कोई महत्त्व नहीं, चाहे वह व्यक्ति कोई भी क्यों न हो। परन्तु तुम्हारी समझ में ये बातें कभी न आ सकेंगी। (कुछ रुककर) इतने वर्षों के पश्चात् तुम्हारे दर्शन से मुझे परम प्रसन्नता हुई है। मैं अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ कि मेरा सन्देश पाते ही तुमने यहाँ आकर मुझसे मिलने की कृपा की। (कुछ रुककर) अब मुझे विदा दो। शकटार अपना कार्य करेगा और तुम अपना करो।

[दोनों उठ खड़े होते हैं। शकटार दोनों आसनों को उठाता है। राक्षस उसी प्रकार सिर झुकाये बिना एक शब्द भी कहे शकटार को पुन हृदय से लगाता है और शकटार दाहिनी तथा राक्षस बाँई ओर जाते हैं।]

परदा उठता है

चौथा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र नगर मे नद का प्रमोदोद्यान

समय—रात्रि

[उद्यान वही है जो दूसरे अंक और तीसरे अंक के पहले दृश्यों में था, परन्तु

इस दृश्य में उद्यान का दूसरा भाग दिखायी देता है। दूर पर पीछे की ओर उद्यान का लताओं से आच्छादित हरित कोट है। कोट के ऊपर आकाश में पूर्णचन्द्र और तारागण दृष्टिगोचर होते हैं। कोट से कुछ कम दूर पर ऊँचे वृक्ष हैं, वृक्षों के सामने पुष्पों की क्यारियाँ। इन क्यारियों के बीच में एक बड़ा सा सरोवर बना हुआ है। इस सरोवर में नंद अनेक नर्तकियों के साथ जल-विहार कर रहा है। द्रुमों की पत्रावली, पौधों की पुष्पावली, सरोवर की छोटी छोटी ऊर्मियाँ और नन्द तथा नर्तकियों पर एक दूसरे के द्वारा फिंका हुआ जल तथा उनके रत्नजटित आभूषण, सारा दृश्य, चाँदनी में चमक रहा है। नर्तकियाँ गा रही हैं।]

गान

हे हंसिन, तू क्यों रोती ?
तरल तरङ्गों में बिखरे ये खाले उज्ज्वल मोती।
मन ने तप तप कर पाये हैं,
प्रिय के नयन इन्हें लाये हैं।
युग युग की सतृष्ण ज्वाला री, आज नहीं क्यों खोती ?
ये सच्चे, या कच्चे खोटे,
भाव बहुत हैं, अब ये छोटे।
प्रेम भावना से विष प्याली घूँट अमृत की होती ?
मन का चिर विश्वास विजय है,
भूलें वे फिर भी क्या भय है।
एक सरस चितवन आकांक्षा सभी नहीं क्यों धोती ?

[एकाएक एक तीर आकर नंद के वक्षस्थल में लगता है। कोलाहल मच जाता है। शकटार धनुष लिये हुए दौड़ता हुआ आता है और एक के पश्चात् एक छै बाण और नंद को मारता है।]

शकटार—(जोर से) यह मेरे सात पुत्र, सात पुत्रों की हत्या का प्रतिकार है।

[नंद का मृत शरीर सरोवर में डूबता है। सब नर्तकियाँ भाग जाती हैं। राक्षस का शीघ्रता से प्रवेश।]

राक्षस—(शकटार को देख उत्तेजित हो) यह क्या...यह क्या...

शकटार—(अट्टहास कर) तुम अपना काम करो, राक्षस, शकटार अपना करेगा।

[शकटार भागता है। राक्षस डूबते हुए नन्द को निकालने सरोवर में कूदता है।]

परदा गिरता है

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—शशिगुप्त के शिविर में शशिगुप्त के डेरे का बाहरी भाग

समय—प्रातःकाल

[पीछे की ओर डेरा दिखाता है; सामने डेरे की परछी। (शशिगुप्त का प्रवेश।) शशिगुप्त अपनी साधारण वेषभूषा में है। उसका मुख अत्यन्त उद्विग्न है। उसके पीछे दो भृत्य एक शयन और एक भृत्य एक आसंदी लिये हुए आते हैं।]

शशिगुप्त—(भृत्यों से) हाँ, यहीं रख दो। आज प्रातःकाल से ही ग्रीष्म का प्रकोप है। यहीं बैठूँगा। आर्य चाणक्य के आते ही उन्हें यहीं भेज देना।

[तीनों भृत्य शयन और आसंदी रख कर जाते हैं। शशिगुप्त बेचैनी से इधर उधर टहलता है। कुछ देर में चाणक्य आता है। शशिगुप्त चाणक्य को प्रणाम करता है। चाणक्य आशीर्वाद देता है।]

चाणक्य—तुमने मुझे बुलाया है, वत्स?

शशिगुप्त—हाँ, गुरुदेव, मैंने आपको कष्ट दिया है।

चाणक्य—कहो।

शशिगुप्त—बैठिए, आर्य, मुझे तो आज बहुत कुछ कहना है।

चाणक्य—(शयन पर बैठते हुए) बहुत कुछ कहना है?

शशिगुप्त—हाँ, आर्य, बहुत कुछ। (शयन पर बैठ जाता है।)

चाणक्य—कहो, वह बहुत कुछ क्या है?

शशिगुप्त—(कुछ सोचते हुए) सोच रहा हूँ, कहाँ से आरम्भ करूँ।

चाणक्य—अच्छा, इतना कहना है कि यह सोचना पड रहा है कि कहाँ से आरम्भ करो?

शशिगुप्त—हाँ, आर्य, ऐसी ही बात है।

चाणक्य—(अपनी विकट हँसी हँसकर) अच्छा !

[शशिगुप्त कुछ सोचते हुए सिर झुका लेता है। चाणक्य एकटक उसकी ओर देखता है।]

शशिगुप्त—(उसी प्रकार सोचते हुए) अन्तिम घटना से ही आरम्भ करता हूँ। (कुछ रुककर) यह क्या सत्य है, आर्य, कि महाराज पर्वतक की आपने विषकन्या से हत्या कराई ?

चाणक्य—(गम्भीरता से) सर्वथा सत्य है।

शशिगुप्त—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यह महापातक क्यों किया गया ?

चाणक्य—(फिर से जोर से हँसकर) महापातक ! तुम यह पूछ सकते हो कि यह महापुण्य क्यों किया गया ?

शशिगुप्त—जिन महाराज पर्वतक ने पहले पहल यवनों से घोर युद्ध किया, जिन्होंने आपके कथनानुसार अलक्षेन्द्र को यूनान लौट जाने की सम्मति दी, और इतना ही नहीं, उसे लौटा ही दिया, जिनने यवनों के देश के बाहर निकालने के कारण मेरा सार्वजनिक स्वागत किया; जो भारत पर एक साम्राज्य की स्थापना के लिए आपकी आज्ञा से मेरा साथ दे अपनी सेना सहित मगध पर आक्रमण करने के लिए पधारे, उनकी हत्या, और इस निष्कृष्ट षड्यन्त्र द्वारा उनकी हत्या, महापुण्य है ?

चाणक्य—वत्स, यदि तुम पर्वतक के इन कार्यों का रहस्य जान लो, तथा इन कामों के सिवा और भी उसने जो कुछ किया है वह भी तुम्हें ज्ञात हो जावे, तो तुम मान लोगे कि पर्वतक की हत्या पुण्य है।

शशिगुप्त—बताइए।

चाणक्य—यवनों से युद्ध करने में उसका जो उद्देश्य था वह युद्ध के पश्चात् ही उसकी और अलक्षेन्द्र की सन्धि तथा उसके अलक्षेन्द्र के साथ देने से स्पष्ट हो गया था। इस सम्बन्ध में तुमसे और मुझसे पहले बातचीत हो भी चुकी है। (कुछ रुककर) अलक्षेन्द्र को उसने लौटाया स्वयं भारत-सम्राट् बनने के लिए। तुम्हारा सार्वजनिक स्वागत उसने नहीं किया था, मैंने उससे कराया था।

शशिगुप्त—आपने उनसे कराया था !

चाणक्य—हाँ, मैंने उससे कराया था ।

शशिगुप्त—यह क्यों ?

चाणक्य—देशभक्त शशिगुप्त की प्रतिष्ठा बढाने के लिए, परन्तु शशिगुप्त के व्यक्तित्व के लिए नहीं देश के लिए, वत्स । देश का गौरव बढता है, व्यक्ति विशेष के गौरव बढ़ने से । जिस व्यक्ति का गौरव बढाया जाय वह व्यक्ति गौरव बढाने के योग्य होना चाहिए, अन्यथा अनर्थ हो सकता है । पर्वतक के द्वारा तुम्हारे स्वागत के आयोजन में मेरा यही उद्देश्य था । (कुछ रुककर) भारत को एक साम्राज्य में परिणत करने के लिए मगध पर पर्वतक के आक्रमण का रहस्य भी उसकी उस साम्राज्य के सम्राट होने की इच्छा थी ।

शशिगुप्त—वे भारत के सम्राट होने के सर्वथा योग्य थे ।

चाणक्य—कदापि नहीं । जिस पर्वतक ने केवल अपनी अहंमन्यता की रक्षा के लिए यवनों से युद्ध किया, जिसने अपनी महत्वाकाक्षा की पूर्ति के लिए अलक्षेन्द्र से सन्धि कर विदेशी अलक्षेन्द्र का देश को पददलित करने में साथ दिया, जिसने स्वय सम्राट होने के लिए अलक्षेन्द्र को यूनान लौटाया और मगध पर आक्रमण करने आया, वह ऐसे समय, जबकि अलक्षेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् सिल्यूकस के भारत-आक्रमण के समाचार आ रहे हैं, भारत-सम्राट होने के कदापि योग्य न था । (कुछ रुककर) वत्स, तुम नहीं कह सकते कि यदि वह भारत सम्राट हो जाता, और यदि सिल्यूकस का आक्रमण होता तो वह क्या करता ।

[शशिगुप्त मस्तक झुका कर कुछ सोचने लगता है । चाणक्य शशिगुप्त की ओर देखता है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

चाणक्य—(शशिगुप्त की ओर देखते हुए) और फिर ..और फिर एक सबसे बड़ा सबसे बड़ा उसका षड्यन्त्र तो तुम अभी जानते ही नहीं हो।

शशिगुप्त—(सिर उठाकर) कौन सा ?

चाणक्य—जो उसने तुम्हारे वध कराने के निमित्त किया था ।

शशिगुप्त—(आश्चर्य से) मेरे वध कराने के निमित्त ?

चाणक्य—हाँ, वत्स, तुम्हारे वध कराने के निमित्त ! यदि उसका वध न किया जाता तो जिसे आज मैं भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य मानता हूँ, उसका जीवन सुरक्षित नहीं था। तुम्हारे वध के लिए जो षड्यन्त्र किया गया था उसका प्रमाण मैं तुम्हारे सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

[चाणक्य का शीघ्रता से प्रस्थान। शशिगुप्त उठकर उद्विग्नता से इधर उधर टहलता है। चाणक्य शकटार के साथ लौटता है। शकटार शशिगुप्त का अभिवादन करता है। शशिगुप्त अभिवादन का उत्तर देता है। शशिगुप्त और चाणक्य शयन तथा शकटार आसदी पर बैठता है।]

चाणक्य—आर्य शकटार, पर्वतक महाराज ने इनके वध के लिए जिस प्रकार के षड्यन्त्र की रचना की थी, वह इन्हें बता दीजिए।

शकटार—जो आज्ञा। (कुछ रुककर) राजन्, ज्योंही मैं आपकी सेना के साथ आया त्योंही शनैः शनैः पर्वतक महाराज ने मुझसे घनिष्ठता बढाना आरम्भ किया। वे न जानते थे कि आर्य चाणक्य और मैं सहपाठी हूँ। मैं आर्य चाणक्य से समस्त वृत्त कहता रहता था और उन्हीं की आज्ञानुसार सारा कार्य करता था। आर्य चाणक्य की आज्ञानुसार मैंने इस घनिष्ठता को बढ़ने दिया। अन्त में पर्वतक महाराज ने मुझसे कहा कि आपके रहते वे भारत का निष्कंटक राज्य नहीं कर सकते। मुझे अपना मंत्री बनाने का आश्वासन दे आपके वध का कार्य उन्होंने मुझे सौंपा। आपके वध के पश्चात् आर्य चाणक्य के वध का आयोजन किया गया था, पर जिस रात को वधिक आपका वध करने वाले थे उसी रात को विषकन्या द्वारा पर्वतक महाराज का वध होगया।

[शशिगुप्त सिर झुकाकर चुप हो जाता है। चाणक्य और शकटार उसकी ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—(शकटार से) क्षमा कीजिए, आर्य शकटार, आपको कष्ट दिया, आप चाहें तो अब जा सकते हैं।

[शकटार का अभिवादन कर प्रस्थान]

शशिगुप्त—(धीरे धीरे सिर उठाते हुए) आर्य, इस घृणित राज्य के लिए यह सब !

चाणक्य—घृणित राज्य ! घृणित राज्य तब जब वह अपने लिए हो। (कुछ रुककर) वत्स, पर्वतक की हत्या से न जाने कितनी बड़ी बड़ी हत्याएँ बची हैं। यह पाप नहीं पुण्य है। इस पुण्य से न जाने कितने महान पातक बच गये हैं। शकटार ने अपने सात पुत्रों की हत्या का प्रतिकार लेने के लिए नंद का वध कर दिया, परिणाम स्वरूप मगध में युद्ध न हुआ। स्त्रियों को वीरों के लिए मनोरजन की सामग्री समझने वाले पर्वतक की विषकन्या ने हत्या कर डाली। केवल अपनी महानता के लिए ही सारे संसार को साधन मानने वाला पर्वतक भारतीय साम्राज्य का सम्राट न हुआ। (कुछ रुककर) एक ही बुरी बात हुई, वत्स कि . (चुप हो जाता है।)

शशिगुप्त—(चाणक्य की ओर देखते हुए) कि !

चाणक्य—कि हेलन...

[हेलन का नाम सुनते ही शशिगुप्त के मुख से हलकी सी ठडी साँस निकलती है और उसके मुख का रङ्ग उतर जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके नेत्र दूर किसी वस्तु को बड़े ध्यान से देख रहे हैं। चाणक्य एक क्षण बड़े ध्यान से उसकी ओर देखकर पुन कुछ अधिक तीव्रता से बोलता है। शशिगुप्त सहसा चौक कर उसकी ओर देखता है।]

चाणक्य—हेलन के प्रेम के कारण तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर हाथ में आये हुए सिल्यूकस को छोड़ दिया। वही सिल्यूकस भारत पर आक्रमण करने की बात सोच रहा है। (कुछ रुककर) पर हानि नहीं। उत्तरापथ मे अलक्षेन्द्र के क्षत्रप रहते हुए भी जब तुम उसे देश से बाहर निकालने में समर्थ हो सके तब भारत सम्राट के पद पर स्थित उससे कहीं छोटे यवन सिल्यूकस को तो तुम सरलता से पराजित कर सकोगे। इस बार तो सिल्यूकस तथा उसके सभी साथियों का इस प्रकार वध करना होगा कि फिर कभी कोई यवन भारत पर दृष्टि उठाने का भी साहस न कर सके।

शशिगुप्त—किन्तु, आर्य, इस साम्राज्य का ..

चाणक्य—मैं जानता हूँ वत्स, इस साम्राज्य का तुम्हें लोभ नहीं है। मैं जानता हूँ तुम अपने साढे तीन हाथ के शरीर के लिए कुछ नहीं करते,

किन्तु सब कुछ देश के लिए करते हो। मैंने कहा था तुमसे अधिक वीर, तुमसे अधिक साहसी, तुमसे अधिक आदर्शवादी, तुमसे अधिक देश-भक्त, तुमसे अधिक शुद्ध अन्तःकरण और आचरण वाला अन्य कोई व्यक्ति इस समय आर्यावर्त में नहीं है। देश की रक्षा और देश के उत्कर्ष के लिए चाणक्य, शशिगुप्त को भारत सम्राट बनाना चाहता था। भारतीय रक्तपात के बिना ही आज यह साम्राज्य तुम्हारे चरणों में लोट रहा है।

शशिगुप्त—(भर्राये हुए स्वर में) परन्तु, आर्य.. परन्तु आर्य, जिस साम्राज्य में राज्य को ही सारा महत्व है, जिसमें साध्य ही सब कुछ है साधन कुछ नहीं, ऐसे साम्राज्य का संचालक हो. मैं नित्यप्रति इसी प्रकार के कार्य, इसी प्रकार के साधनों का उपयोग नहीं कर सकता। आज पर्यन्त आपकी कोई आज्ञा न टालने पर भी आपकी इस आज्ञा का मुझसे पालन न हो सकेगा।

चाणक्य—(विकट हँसी हँसकर) ऐसा ! तो अर्जुन के सदृश तुम्हें भी मोह हो रहा है। (कुछ रुककर) अच्छी बात है, सोच लो, भली भाँति विचार लो। (खड़े होते हुए क्रोध से) चाणक्य अगणित शशिगुप्तों के निर्माण की क्षमता रखता है।

[चाणक्य का शीघ्रता से प्रस्थान । शशिगुप्त लम्बी साँस लेकर खड़े हो विचार में अत्यन्त निमग्न इधर उधर टहलता है।]

यवनिका

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का सभाभवन

समय—मध्याह्न

[विशाल सभाभवन है। सभाभवन तक्षशिला के सभाभवन के सदृश ही है, परन्तु उससे कहीं बड़ा। इसके स्तम्भ काष्ठ के न होकर पाषाण के है, जिस पर सुवर्ण का काम है और यत्र तत्र रत्न भी लगे हैं। इस सभाभवन की भित्तियों की चित्रकारी में भी सुवर्ण का उपयोग किया गया है और छत पर भी सुवर्ण का काम

है। दोनों ओर की भित्तियों के सिरों पर एक एक द्वार है, परन्तु इन द्वारों की चौखटें और द्वारों के कपाट स्वर्ण से मढे हुए हैं। दोनों द्वार खुले हुए हैं जिनके बाहर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित उद्यान का कुछ भाग दिखायी देता है। तक्षशिला के सभाभवन के समान इस सभाभवन की पृथ्वी पर भी बिछावन बिछी है, परन्तु यह रेशमी वस्त्र की हैं। इस पर तक्षशिला के सभाभवन के सदृश ही पीछे की भित्ति के बीचो बीच, उसके बहुत सन्निकट, सिंहाकार पायों का सिंहासन रखा हुआ है। सिंहासन के नीचे पादपीठ है और सिंहासन की दाहनी और बाँई ओर पंक्ति में आसंदियाँ। सिंहासन, पादपीठ और सारी आसंदियाँ सुवर्ण से मण्डित हैं। स्वर्ण पर यत्र तत्र रत्न जड़े हुए हैं। सिंहासन पादपीठ और आसंदियों पर स्वर्ण के काम से विभूषित, गद्दे तकिये लगे हैं। सिंहासन तथा उसके आस पास की आसंदियों के सामने, कुछ दूर आगे हटकर, यहाँ भी तक्षशिला के सदृश व्यासपीठ है, परन्तु यह भी स्वर्ण से मढा और रत्नों से जड़ा हुआ है। इस पर भी सुनहरे काम के गद्दे तकिये हैं। व्यास पीठ के सामने अर्द्ध चन्द्राकार रूप में यहाँ भी आसंदियों की अनेक पंक्तियाँ रखी हैं। इनके मुख सिंहासन की ओर हैं। ये आसंदियाँ भी सुवर्ण से मढी हैं और इन पर भी रत्न जगमगा रहे हैं। इन आसंदियों पर भी सुनहरे काम के गद्दे तकिये लगे हैं। इन आसंदियों की पंक्तियों के ठीक बीच से सिंहासन तक मार्ग गया है, जिससे ये पंक्तियाँ भी दो विभागों में बँट गई हैं। यत्र तत्र ऊँची ऊँची सुवर्ण की धूपदानियों में धूप जल रही है। सभा भवन कदली वृक्षों, पुष्प पत्रों के बन्दनवारों और मंगल कलशों से सुशोभित है। सिंहासन रिक्त है। सिंहासन की दाहनी ओर की आसंदियों में से पहली आसंदी पर महाधर्माध्यक्ष बैठा है। उसकी अवस्था सत्तर वर्ष से कम न होगी। वह गेहुएँ वर्ण का ऊँचा पूरा सुडौल शरीर और मुख का व्यक्ति है। सिर पर चौड़ी श्वेत शिखा और वक्षस्थल तक लंबी श्वेत दाढ़ी है। मूछें भी बड़ी बड़ी हैं और वे भी श्वेत हो गयी हैं। भवें और शरीर पर जो रोमावली दिखती है वह सब भी श्वेत हैं। महाधर्माध्यक्ष श्वेत सूती उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं। उत्तरीय में से वक्षस्थल पर मोटा श्वेत यज्ञोपवीत दिखता है। मस्तक, वक्षस्थल और भुजाओं पर भस्म के त्रिपुण्ड लगे हैं। पैरों में काष्ठ की पादुकाएं हैं। महा धर्माध्यक्ष के निकट की आसंदी पर राक्षस, उसके पश्चात् की आसंदी पर चाणक्य, उसके निकट की आसंदी पर शकटार, उसके पास की आसंदी पर वीरभद्र, उसके निकट की अन्य आसंदियों पर अनेक ब्राह्मण विराजमान हैं। वीरभद्र तो केवल

कौपीन ही धारण किये है। शेष ब्राह्मणों की वेषभूषा चाणक्य और राक्षस के सदृश है। सिंहासन की बाँईं ओर की आसदियों पर कुलपुत्र और सामन्त बैठे हुए हैं। ये सभी कौशेय वस्त्र के सुनहरी काम वाले उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं। सब सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर, हाथों में वलय और उगलियों में मुद्रिकाएँ पहने हैं। सबके आभूषण सुवर्ण के रत्न जटित हैं। सब के कमर पट्टों में बाँईं ओर सुनहरे कोष में खड्ग पड़े हैं। अर्द्ध चन्द्राकार पंक्तियों की आसंदियों पर प्रतिष्ठित नागरिक बैठे हुए हैं। सबकी वेषभूषा कुलपुत्रों और सामन्तों समान ही है, परन्तु उनकी कमर में खड्ग नहीं है। नेपथ्य से शृंग, रम्मट, शंख, भेरी और जयघट पंच महावाद्यों की धीमी ध्वनि आ रही है। दाहनी ओर के द्वार से महाप्रतिहार का प्रवेश। वह वृद्ध ऊँचा पूरा लंबी मूछों और दाढी वाला मनुष्य है। वेषभूषा तक्षशिला के महाप्रतिहार के सदृश है।]

महाप्रतिहार—(शख बजाकर) जय, महाराज शशिगुप्त जय।

[फिर शंख बजाकर महाप्रतिहार एक ओर खड़ा हो जाता है। सब समासद खड़े होते हैं। दाहिने द्वार से सुवर्ण मंडित तथा रत्नों से देदीप्यमान शिविका पर शशिगुप्त का प्रवेश। शशिगुप्त का सिर खुला हुआ है। शरीर पर वह कौशेय वस्त्र का केशरी कामदार उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए है। रत्न जटित सुवर्ण के कमण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ भी धारण किये हैं। कमर के कमरपट्टे में बाईं ओर सुनहरे कोष में खड्ग है और पैरों में सुवर्ण लगी हुई काष्ठ-पादुकाएँ। शिविका को आठ शिविका-वाहक उठाये हुए हैं। इनकी वेषभूषा भी तक्षशिला के शिविका-वाहकों के सदृश है। शिविका सिंहासन के निकट रखी जाती है। शशिगुप्त शिविका से उतर सिंहासन के एक ओर खड़े हो ब्राह्मणों का हाथ जोड कर अभिवादन करता है। ब्राह्मण हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं। शेष समासद मस्तक झुका शशिगुप्त का अभिवादन करते हैं। शशिगुप्त सिर झुका उस अभिवादन का उत्तर देता है। शिविका-वाहक रिक्त शिविका को उठा कर बाँईं ओर के द्वार से बाहर जाते हैं। बाँईं ओर के द्वार से सात स्त्रियों का प्रवेश। सातों स्त्रियाँ सुन्दरी है और उनकी अवस्था बीस और पच्चीस के बीच में है। वे कौशेय के केशरी वस्त्र धारण किये हैं तथा रत्न जटित आभूषणों से सुसज्जित हैं। इन सातों स्त्रियों में से छै दो दो की पक्ति में हैं और सबसे पीछे एक। पहली दो के हाथों में सुवर्ण का एक एक थाल है। एक थाल में रत्नों के देदीप्यमान राजमुकुट तथा राज दण्ड है और दूसरे

थाल में कुकुम, अक्षत, पुष्प, श्रीफल, कुश, सुवर्ण के कलश में गंगाजल इत्यादि अभिषेक की सामग्री। इन दोनों के पीछे की दो के कन्धों पर सुवर्ण की डंडियों वाले सुरागाय की पुच्छ के श्वेतचँवर रखे हैं। इनके पीछे की दो के हाथों में चन्दन की डाँडी के खस के दो व्यजन हैं और इनके पीछे की एक स्त्री के हाथ में हाथी दाँत की डाँडी का श्वेत छत्र, जिसमें मोतियों की झालर लगी हुई है। सातों स्त्रियाँ सिंहासन के निकट बढ़ती हैं। पाँच तो सिंहासन के पीछे, छत्रवाहिका बीच में तथा उसके उभय ओर एक एक चामर-वाहिका और एक एक व्यजन-वाहिका खड़ी हो जाती है और थाल वाली दोनों स्त्रियाँ महाधर्म्माध्यक्ष के निकट खड़ी होती हैं।]

महाधर्म्माध्यक्ष—(शशिगुप्त से) आप सिंहासनासीन हों, देव।

[शशिगुप्त सिंहासन पर बैठता है। महाधर्माध्यक्ष थाल के कुकुम से उसको तिलक कर, अक्षत लगा, उसके सिर पर राजमुकुट रख, हाथ में राजदंड देता है। फिर जल का कलश उठा कुश से मार्जन करता है।]

महाधर्माध्यक्ष—याभिरिन्द्रय भ्याषिञ्चत्प्रजा पति· सोम राजानं वरुणं यम मनुं ताभिरद्भिषिञ्चामित्वा मह राज्ञा त्वमाधिराजो भवेह।

महाप्रतिहार—(शंख बजाकर) जय, राजराजेश्वर भारतसम्राट महा-राजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय। (फिर शख बजाता है।)

सभासद—(एक स्वर से) जय राजराजेश्वर भारतसम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय।

[प्रतिध्वनि होती है। महाधर्म्माध्यक्ष अपने स्थान पर तथा सब सभासद अपने अपने स्थानों पर बैठते हैं। अब राक्षस, चाणक्य, वीरभद्र तथा सब ब्राह्मण उठकर सिंहासन के सामने आते और थाल वाली स्त्री के हाथों के थाल में से पुष्प उठाते हैं। चन्द्रगुप्त खड़े होकर हाथ जोड सिर झुका ब्राह्मणों का अभिवादन करता है।]

ब्राह्मण—(एक साथ) स्वस्तिनइन्द्रो...

[चन्द्रगुप्त के मस्तक पर ब्राह्मण पुष्प फेकते हैं। चन्द्रगुप्त पुन· सिर झुका और हाथ जोड कर अभिवादन करता है। ब्राह्मण फिर अपने अपने स्थानों पर आकर बैठते हैं। अब कुलपुत्र और सामन्त उठकर सिंहासन के सामने जा कोषों से

अपने अपने खड्ग निकाल उन्हें मस्तक तक ले जाकर चन्द्रगुप्त का अभिवादन करते हैं। चन्द्रगुप्त बैठे बैठे ही सिर झुका इस अभिवादन का उत्तर देता है। कुलपुत्र और सामन्त फिर अपने अपने स्थानों पर आकर बैठते हैं। अब सब नागरिक अपने अपने स्थानों पर ही एक साथ खड़े हो अपने मस्तकों को अत्यधिक झुका चन्द्रगुप्त का अभिवादन करते हैं। चन्द्रगुप्त बैठे बैठे ही अपना मस्तक झुका इस अभिवादन का भी उत्तर देता है। नागरिक फिर बैठ जाते हैं। अब चाणक्य उठकर धीरे धीरे व्यासपीठ पर बैठता है। सारी सभा की दृष्टि चाणक्य की ओर घूम जाती है।]

चाणक्य—राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य, महाधर्म्माध्यक्ष, आर्य राक्षस, ब्राह्मणो, कुलपुत्रो, सामन्तो और नागरिको! इस प्राचीनतम भारतवर्ष के इतिहास में आज की नवीनतम घटना कदाचित् एक श्रेष्ठतम स्थान रखेगी। राष्ट्र का यथार्थ निर्माण इतिहास के वे सस्मरण करते हैं जिनमें उस राष्ट्र के प्रमुख पुरुषों या स्त्रियों के महान चरितों का वर्णन रहता है। यथार्थ में राष्ट्र उन थोड़े से पुरुषों या स्त्रियों में निवास करता है जो कुछ सोचने और कुछ करने की क्षमता रखते हैं। अश्वक' जाति के एक साधारण से साधारण अधिपति ने अपनी असीम देशभक्ति, अपनी महान वीरता, अपने सर्वस्व त्याग, अपनी अपार कष्ट-सहिष्णुता के कारण असाधारण से असाधारण तथा उच्च से उच्च स्थान प्राप्त किया है; इस घटना ने समूचे देश की काया पलट दी है और इस घटना का ऐतिहासिक सस्मरण सदा के लिए राष्ट्र निर्माण में एक विशेष स्थान रखेगा।

[महाप्रतिहार शंख बजाता है।]

चाणक्य—फिर विशेषता यह है कि यह स्थान उसने अपनी अत्यधिक अनिच्छा से ग्रहण किया। उसने जो कुछ किया वह किसी पद प्राप्त करने के लिए नहीं, वरन अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए। मेरा तो मत है कि किसी पद को ग्रहण करने का अधिकारी वही व्यक्ति होता है जो उस पद के लिये लालायित न हो, उस पद के पीछे न दौड़े. वरन् वह तो उससे दूर भागे और वह पद ही उसका पीछा करे। (कुछ रुककर) कुछ वर्ष बीत गये अश्वकों के अधिपति शशिगुप्त ने उच्चतम तथा परम पुनीत

हिमालय के मोर शिखर पर आर्यावर्त को विदेशियों के कलंक से मुक्त करने तथा भारतवर्ष में एक साम्राज्य स्थापति करने का उच्च से उच्च तथा पवित्र से पवित्र सकल्प किया था। उसी संकल्प से इस महान यज्ञ का कठिन अनुष्ठान आरभ हुआ। उसकी पूर्णाहुति हो उसके अवभृत स्नान के स्थान पर यह अभिषेक हो रहा है। वेदोक्त प्रणाली के अनुसार किसी भी महान यज्ञ के पश्चात् यज्ञकर्ता का पुनर्जन्म माना जाता है। जन्म के अनन्तर नामकरण होता ही है। इस स्वातन्त्र्य संग्राम रूपी महान यज्ञ के पश्चात् शशिगुप्त ने चन्द्रगुप्त के नाम से पुनर्जन्म ग्रहण किया है और यज्ञ का सकल्प मोर पर्वत पर होने के कारण उन्होंने अपने कुल का नाम मौर्य वंश रखा है।

[महाप्रतिहार शख बजाता है]

चाणक्य—(चन्द्रगुप्त की ओर घूमकर) सम्राट ! इस ब्राह्मण का जीवन के एक क्षेत्र का कार्य आज समाप्त हो रहा है। आर्यावर्त के ब्राह्मणों का धर्म्म परम पवित्र किन्तु साथ ही अत्यधिक कठिन भी है। ब्राह्मण चाणक्य जानता है कि उसे कर्तव्य पालन में ब्राह्मण होते हुए भी अनेक ऐसे कार्य करने पड़े, जो कदाचित् ब्राह्मणोचित कार्य नहीं कहे जायँगे। महान और धर्म्म पूर्ण साध्य के लिए यदि किन्हीं भी साधनों का उपयोग किया जाय तो भी चाणक्य उसे उचित ही मानता है, फिर भी वह यह अवश्य जानता है कि वे कर्म्म परम्परागत ब्राह्मण धर्म्म के अनुकूल नहीं। (कुछ रुककर) चाणक्य ब्राह्मण है। उसका इस लोक का एक प्रकार कार्य समाप्त हो गया और अब उसे लोक कल्याण के अन्य क्षेत्र में कार्य करना आवश्यक है। सम्राट से वह अब संन्यासाश्रम ग्रहण करने की आज्ञा चाहता है और प्रस्ताव करता है कि भारतीय साम्राज्य का महामंत्री पद आर्य राक्षस को दिया जाय। इसी के साथ वह यह घोषित करता है कि इस महान यज्ञ की पूर्ति के उपलक्ष में इकतालीस दिन तक सारे भारतवर्ष में उत्सव मनाया जायगा।

[चाणक्य व्यासपीठ से उतरता है। महाप्रतिहार शंख ध्वनि करता है। सारी सभा एकटक राक्षस की ओर देखती है। राक्षस का सिर झुक जाता है। कुछ देर

निस्तब्धता रहती है। चाणक्य अपने स्थान पर बैठता है और राक्षस उठकर धीरे धीरे आकर व्यास-पीठ पर। उसी समय दाहनी ओर के द्वार से एक सैनिक प्रवेश कर शीघ्रता से चन्द्रगुप्त के सामने आ, खड्ग निकाल उसका अभिवादन कर, एक पत्र चन्द्रगुप्त को दे एक ओर खड़ा हो जाता है। चन्द्रगुप्त पत्र पढ़ता है और उसे हाथ में रख लेता है।]

राक्षस—राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य, महाधर्म्माध्यक्ष, आर्य चाणक्य, ब्राह्मणो, कुलपुत्रो, सामन्तो और नागरिको! आर्य चाणक्य ने जिस महान और पवित्र कार्य को किया है उसे आप ही क्या आज सारा संसार जानता है। आर्य चाणक्य ने इस देश को विदेशियों से बचा, इस देश में एक साम्राज्य की स्थापना कर, उस साम्राज्य का अधीश्वर सम्राट चन्द्रगुप्त के सदृश महापुरुष को बना, वह कार्य कर दिखाया, जो आज तक के इस देश के क्या संसार के इतिहास में किसी भी एक व्यक्ति से न हो सका था; और इतने पर भी कैसा ब्राह्मणोचित त्याग है। आर्य चाणक्य का इस सारे आयोजन में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं। साम्राज्य उनके चरणों पर लोट रहा है, पर वे उसके मंत्री भी नहीं रहा चाहते। वे तो संन्यास ग्रहण करना चाहते हैं।

[महाप्रतिहारी शंख बजाता है]

राक्षस—(कुछ रुककर) आर्य चाणक्य भारतीय साम्राज्य का मंत्री मुझे बनवाना चाहते हैं; परन्तु मैंने क्या किया है? (कुछ रुककर) जहाँ आर्य चाणक्य ने अश्वकों के साधारण अधिपति को भारत का सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य बना दिया वहाँ मैं भारत-सम्राट नंद को उनके स्थान पर भी रख सकने में समर्थ न हो सका। जब आर्य चाणक्य विदेशियों को इस देश से निकाल रहे थे, स्वतंत्रता के संग्राम में उत्तरापथ और सिन्ध के भारतीय अपने प्राणों को तुच्छ मान अपने शरीरों की स्वतन्त्रता की यज्ञ-वेदी में आहुतियाँ डाल रहे थे तब मैं... तब मैं .. चुपचाप यहाँ बैठे बैठे उस दृश्य को देख रहा था। (कुछ रुककर चन्द्रगुप्त की ओर देख कर) सम्राट! आर्य चाणक्य का कार्य समाप्त नहीं हुआ है। अभी तो इस साम्राज्य की सारी व्यवस्था करनी है। संभव है विदेशियों का पुनः आक्रमण हो। आर्य चाणक्य

को सन्यास लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। मैं भारतीय साम्राज्य के मन्त्री-पद के लिए किसी भी प्रकार योग्य नहीं हूँ। मैं अपने को अच्छी प्रकार जानता हूँ और मैं इस पद को कदापि स्वीकृत नहीं कर सकता। आर्य चाणक्य के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति से इस समय महामन्त्री का कार्य नहीं चल सकता। मैं अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सका हूँ, सन्यास लेने की उन्हें नहीं, मुझे आवश्यकता है।

[राक्षस व्यास-पीठ से उतरता है। महाप्रतिहार शख बजाता है। राक्षस अपने स्थान पर बैठता है। चन्द्रगुप्त सिहासन से उठ व्यासपीठ की ओर आता है।]

महाप्रतिहार—(शख बजाकर) जय राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय।

सभासद—(एक स्वर से) जय राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय।

चन्द्रगुप्त—(व्यास पीठ पर बैठकर) महाधर्म्माध्यक्ष, आर्य चाणक्य, आर्य राक्षस, ब्राह्मणों, कुलपुत्रो, सामन्तो और नागरिको! आपने मुझ सदृश एक साधारण क्षत्रिय का भारत सम्राट के पद पर अभिशेष कर यह प्रमाणित किया है कि ससार में व्यक्ति और कुल को नहीं, परन्तु कार्य का महत्व है।

[महाप्रतिहार शखध्वनि करता है।]

चन्द्रगुप्त—आपने मुझ पर जो कृपा दर्शायी है, मुझ में जो विश्वास प्रदर्शित किया है, उसके लिए मैं आपको क्या कहूँ, अनुग्रह मात्र प्रदर्शित करना तो बहुत छोटी बात होगी। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं आपकी कृपा और विश्वास का पात्र रह सकूँ।

[महाप्रतिहार शखध्वनि करता है।]

चन्द्रगुप्त - आर्य चाणक्य और आर्य राक्षस दोनों संन्यास ग्रहण करना चाहते हैं, परन्तु जो सूचना अभी अभी उत्तरापथ से आयी है, वह यदि उन्हें विदित होती तो वे कदाचित् यह प्रस्ताव ही न करते। (हाथ के पत्र को देखते हुए) उत्तरापथ पर फिर से यवन सम्राट सिल्यूकस का आक्रमण हुआ

है और हमें इस समय अन्य सभी बातों को भूल देश की रक्षा के लिए तत्काल उत्तरापथ की ओर प्रस्थान करना है।

महाप्रतिहार—(शंखध्वनि कर) जय परम पुनीत भारतवर्ष जय। जय राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय।

सभासद—जय परम पुनीत भारत देश जय। जय राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय।

चन्द्रगुप्त—मुझे खेद है कि (पत्र को दिखाते हुए) यह सूचना उत्तरापथ से थोड़े ही विलंब से मिली। अभिषेक के पूर्व यदि यह पत्र आ जाता तो आज यह अभिषेक ही न होता यह होता यवनों की हार और भारतीयों की विजय के पश्चात् तथा इस पद पर अभिषिक्त होता वह व्यक्ति जो सिल्यूकस को पराजित करता।

[महाप्रतिहार शंख बजाता है।]

चन्द्रगुप्त—अब तक मैंने सारा कार्य आर्य चाणक्य की आज्ञा से किया है, परन्तु अब आज्ञा देना मेरा कार्य है और मंत्रणा देना उनका। मैं उन्हें आज्ञा देता हूँ कि वे अपने सन्यास को एक ओर रख मेरे साथ उत्तरापथ को प्रस्थान करें। (कुछ रुककर) मै आर्य राक्षस को आज्ञा देता हूँ कि भारतीय साम्राज्य के महामन्त्रित्व का उत्तरदायित्व वे संभालें और मैं घोषित करता हूँ कि इकतालीस दिनों तक जिस उत्सव की आर्य चाणक्य ने घोषणा की है वह इस समय बन्द रहेगा। इस उत्सव का आरम्भ होगा उस दिन जिस दिन उत्तरापथ से यवनों को निकाल विजयी भारतीय सेना विजय-पताका लिये हुए पुनः पाटलिपुत्र की ओर प्रस्थान करेगी। मेरा दृढ विश्वास है कि यूनान क्या यदि सारा पश्चिम हमारे देश में घुस आवे तो हम उसे भी निकालने अथवा निगल कर पचा जाने की शक्ति रखते हैं।

महाप्रतिहार—(शंखध्वनि कर) जय परम पुनीत भारत देश जय। जय राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय।

सभासद—जय परम पुनीत भारत देश जय। जय राजराजेश्वर भारत सम्राट महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य जय।

चन्द्रगुप्त—मैं सेना सहित आज ही सायंकाल उत्तरापथ की ओर प्रस्थान

करूँगा और जब तक यवनों को इस पुण्य भूमि से बाहर न निकाल दूँगा तब तक पुनः पाटलिपुत्र न लौटूँगा।

[चन्द्रगुप्त व्यास-पीठ से उठता है। पुनः जयजयकार होता है।]

परदा गिरता है

दूसरा दृश्य

स्थान—सिन्धु के परे उत्तर में एक जंगली मार्ग

समय—प्रदोष

[कुछ यवन सैनिकों का प्रवेश]

एक सैनिक—तो अब शशिगुप्त नहीं, चन्द्रगुप्त से युद्ध हो रहा है।

दूसरा—भाई, दोनों एक ही हैं। मगध का राज्य लेकर शशिगुप्त ने ही अपना नाम चन्द्रगुप्त रखा है।

तीसरा—तो चन्द्रगुप्त के पैरों का पसीना सिंह ने चाटा था, या शशिगुप्त का?

दूसरा—चन्द्रगुप्त जब शशिगुप्त था तब उसके पैरों का पसीना सिंह ने चाटा था।

चौथा—और शशिगुप्त जब चन्द्रगुप्त हुआ तथा हमारे सम्राट सिल्यूकस का सामना करने पाटलिपुत्र से चला तब एक वन में एक जंगली हाथी दौड़ कर आया और उसने अपनी सूँड़ से उसे उठाकर अपने मस्तक पर बिठा लिया।

पाँचवाँ—अरे, भाई, लोग कहते हैं चन्द्रगुप्त भारतीय देवता विष्णु का अवतार है।

छठवाँ—जो कुछ हो, इतना निश्चित है कि हम लोग जीत नहीं सकते।

सातवाँ—मेरा तो मत ही दूसरा है।

पहला—क्या?

सातवाँ—मैं अवतार ववतार नहीं मानता। यदि अलक्षेन्द्र विपाशा से न लौट मगध जाते तो उनकी जीत निश्चित थी और यदि सिल्यूकस आंटिगोनस, सिसिमाकस और टालेमी में झगड़ा न होता तथा सबने मिलकर भारत पर आक्रमण किया होता तो यवन जीतते, भारतीय नहीं।

पाँचवाँ—इन बातों में क्या धरा है—यदि यह न होता तो वह न होता और वह होता तो यह होता, आज क्या हो रहा है, यह देखो।

छठवाँ—न जाने बारबार हम यहाँ मरने को क्यों लाये जाते हैं।

सातवाँ—हम आते क्यों हैं?

आठवाँ—हम क्या आते हैं, पेट लाता है।

नवाँ—पेट तो कहीं भी भर सकता है, पेट नहीं धनवान होने का लोभ लाता है।

दसवाँ—और लोभ से मनुष्य मरता ही है।

ग्यारहवाँ—आकर भूल की यह ता मानते हो न!

नवाँ—अवश्य भूल की।

ग्यारहवाँ—तो मेरी तो सम्मति है कि जिस प्रकार अलक्षेन्द्र की सेना ने विपाशा को पार करना अस्वीकृत कर दिया था और अपने शस्त्र रख दिये थे उसी प्रकार हमें सिन्धु को पार करना अस्वीकार कर अपने शस्त्र रख देना चाहिए।

दसवाँ—मैं समझता हूँ इसकी आवश्यकता ही न पड़ेगी। जिस प्रकार लड़ाई चल रही है उसे देखते हुए सिन्धु पार करने का समय ही न आवेगा; हमें शस्त्र न रखने होंगे स्वय सिल्यूकस शस्त्र रख देंगे।

[नेपथ्य में दूर पर गान सुन पड़ता है।]

पहला—लो, हेलन आ रही हैं, चल दो यहाँ से नहीं तो युद्ध के अतिरिक्त अन्न बाँटो, वस्त्र बाँटो, औषधि बाँटो, न जाने और क्या क्या करना होगा।

[सबका शीघ्रता से प्रस्थान। गान की ध्वनि निकट आती जाती है।]

गान

स्वान्त रे विभ्रान्त मत हो पी अमृत-विश्वास।
देख जग में झाँक कर तू,
मौन निज में आँक कर तू,
विश्वपट मे प्रस्फुटित है एक ही आभास।
स्वार्थ की उद्भ्रान्त तड़पन,
खोजती सुख शान्ति के कण,
बिन्दु से सूखे उदधि की कब बुझी है प्यास ?
सदय सेवा के सफल क्षण,
उमड़ता उर द्रवित लोचन,
सघन तम मे किरण रेखा खींचती उल्लास।

[गाते गाते हेलन का प्रवेश। वह अपनी साधारण वेषभूषा में है। वह इधर उधर घूम कर गाती रहती है।]

[सैनिक वेष में सिल्यूकस का प्रवेश]

सिल्यूकस—तेरे गान पर आजकल मुझे क्रोध आ जाता है, बेटी।

हेलन—इसका कारण है, पिताजी।

सिल्यूकस—क्या ?

हेलन—आपकी हार जो हो रही है।

सिल्यूकस—इसका कारण भी कुछ दूर तक तेरा गाना है।

हेलन—(आश्चर्य से) मेरा गान आपकी हार का कारण ?

सिल्यूकस—हाँ, बेटी, वीरभद्र का गान चन्द्रगुप्त की जीत का कारण है और तेरा गान मेरी हार का कारण।

हेलन—(कुछ सोचते हुए) ऐसा ?

सिल्यूकस—तू सोचकर देख ले कि मैं सच कहता हूँ या नहीं। (कुछ ठहरकर) तू वीरभद्र के सदृश काव्य-रचना कर सेना में वीरता और साहस का मन्त्र नहीं फूँक सकती ?

हेलन—(गम्भीरता से सोचते हुए) फूँक सकती हूँ, पिताजी, पर ··पर··· एक शर्त है ?

सिल्यूकस—क्या ?

हेलन—आप सेना सहित यूनान लौट चलिए, चन्द्रगुप्त से यूनान पर आक्रमण कराइए, तब मैं वीरभद्र से भी अधिक वीर-काव्य की रचना करूँगी ; उससे भी अधिक वीरता और साहस का सेना में मंत्र फूँक सकूँगी।

सिल्यूकस—बेटी · बेटी···

हेलन—पिताजी, आप न्याय के पथ पर नहीं हैं, जिस चन्द्रगुप्त ने आपको प्राणदान दिये थे उसके राज्य पर आप अकारण आक्रमण करने आये हैं।

सिल्यूकस—अकारण आक्रमण करने आया हूँ ?

हेलन—अवश्य।

सिल्यूकस—कदापि नहीं। सम्राट अलक्षेन्द्र की अन्तिम अभिलाषा पूर्ण करने आया हूँ ; मरते समय उन्होंने पर्वतक और चन्द्रगुप्त से प्रतिकार लेने की जो आज्ञा दी थी, उसका पालन करने आया हूँ।

हेलन—वह अभिलाषा राक्षसी महत्वाकाक्षा थी। वह आज्ञा अन्याय की पराकाष्ठा थी।

[कुछ देर दोनों चुप रहते हैं। निस्तब्धता रहती है।]

सिल्यूकस—तू जानती है, तू ऐसा क्यों कह रही है ?

हेलन—(सिल्यूकस की ओर देखते हुए) क्यों कह रही हूँ ?

सिल्यूकस—(लम्बी साँस लेकर) अभी भी कदाचित् तू चन्द्रगुप्त पर प्रेम करती है। (कुछ रुककर) ढूँढ़, अपने अन्तःकरण की गहराई में घुस कर ढूँढ़ने का प्रयत्न कर कि मेरा कथन सत्य है या नहीं !

[नेपथ्य में दूर पर गान का शब्द सुनायी देता है। कुछ यवन सैनिक दाहनी ओर से दौड़ते हुए आते हैं।]

एक सैनिक—(सिल्यूकस और हेलन को देखकर) भागिए, भागिए, वीरभद्र अपने सैनिकों के साथ इसी ओर आ रहा है।

सिल्यूकस—(क्रोध से) और तुम लोग भाग रहे हो, कायरो !

[कोई नहीं सुनता। सब सैनिक दौड़ते हुए बाँई ओर जाते हैं। सिल्यूकस और हेलन भी बाँई ओर जाते हैं। गान की ध्वनि निकट आती जाती है। वीरभद्र का सैनिकों के साथ गाते हुए दाहनी ओर से प्रवेश। वीरभद्र केवल कौपीन धारण किये और हाथ में त्रिशूल लिये है। सैनिक सैनिक-वेष में हैं।]

गान

लाया साहस जय सन्देश !

रण प्राङ्गण से रण चण्डी का, सुन लो, हे वीरो ! निर्देश।
शस्त्रों के प्रलयङ्कर बादल, चीत्कारों का गर्जन घोर,
मुण्ड कबन्धों का द्रुत वर्षण, शोणित नद की ज्वार हिलोर,
झञ्झा के विच्छिन्न वेग-सा बढे विषम निर्मम आवेश।

लाया साहस०

रण ताण्डव हो नाश भूमि पर प्राणों की भीषण झकझोर,
शत्रु पक्ष की प्रलय निशा का विजय-गगन में होवे भोर,
शौर्य तेज से उद्भासित हो स्वतन्त्रता का पावन वेश।

लाया साहस०

[वीरभद्र और सैनिक गाते हुए जाते हैं।]

परदा उठता है

तीसरा दृश्य

स्थान—सिन्धु नदी के तट पर युद्ध-क्षेत्र
समय—सन्ध्या

[दृश्य प्राय. वैसा ही है जैसा दूसरे अंक का तीसरा दृश्य था। विस्तृत मैदान है। दूर पर पीछे की ओर सिन्धु नदी का प्रवाह दिखता है, जो अस्त होते हुए सूर्य की रक्त रश्मियों से लोहित रंग का हो रहा है। मैदान में कई शव और

कटे हुए अंग पड़े हैं। नेपथ्य में हाथियों के चिग्घाड़ने, घोड़ों के हींसने और 'मारो मारो' 'भारत सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की जय' 'यवन सम्राट सिल्यूकस की जय' इत्यादि अनेक प्रकार के शब्द सुनायी दे रहे है। मैदान में यवन और भारतीय सैनिकों का भीषण युद्ध हो रहा है। अनेक यवन सैनिक धराशायी होते हैं, कुछ भारतीय भी। यवन सैनिक भागते हैं। भारतीय सैनिक 'भारत सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की जय' शब्द करते हुए उनका पीछा करते हैं। अब कई यवन सैनिकों की टोलियाँ भागती हुई आती है, जिनका पीछा 'भारत सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की जय' बोलते हुए भारतीय सैनिकों की टोलियाँ करती है। कुछ देर पश्चात् आमीक कुछ भारतीय सैनिकों के साथ आता है। दूसरी ओर से चन्द्रगुप्त कुछ भारतीय सैनिकों के साथ आता है। चन्द्रगुप्त और आमीक तथा दोनों दलों के सैनिकों में युद्ध होता है। चन्द्रगुप्त आमीक का हृदय छेदता है। आमीक गिरता है।]

चन्द्रगुप्त—(क्रोध से) पामर! अन्त तक भी तूने देशद्रोह न छोड़ा। वीरगति के योग्य तू न था, पर हुआ सो हुआ। जा, नरक में जा।

[आमीक का शरीर छटपटाता है और उसकी मृत्यु होती है। आमीक के अनुयायी भारतीय सैनिक आयुध रखकर चन्द्रगुप्त की शरण आते हैं। कुछ यवन सैनिकों के साथ सिल्यूकस का प्रवेश। 'मारो मारो' 'सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की जय' 'यवन सम्राट सिल्यूकस की जय' इत्यादि शब्दों के तुमुल नाद के साथ भारतीय और यवनों में घोर युद्ध होता है। चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस का भी सग्राम होता है। युद्ध बहुत देर चलता है। यवन और भारतीय दोनों ही धराशायी होते है। अन्त में चन्द्रगुप्त से सिल्यूकस और भारतीय सैनिकों से यवन सैनिक परास्त होते हैं। सिल्यूकस और यवन सैनिक अपने शस्त्र रखते है। चन्द्रगुप्त के जयजयकार से कानों के परदे फटने लगते है।]

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

स्थान—सिन्धु के पूरे उत्तर में एक जंगली मार्ग

समय—सन्ध्या

[हेलन का गाते हुए दाहनी ओर से प्रवेश । उसका मुख अत्यन्त म्लान है वह गाते हुए टहलती है ।]

गान

छिपा ही रहता हृदय में सतत अपना मोह ।

दूर उठ ऊँचे गगन मे,
खोल पर विस्तृत पवन मे,

भूल सकता नीड़ का क्या, रे विहङ्ग ! विछोह ?

भूल निज सीमा हृदय रे ।
विश्व के प्रति हो सदय रे !

कल्पना की कोर का केवल करुण यह छोह ।

[चन्द्रगुप्त का बाँईं ओर से प्रवेश । हेलन उसे देख चुप होकर खड़ी हो जाती है । चन्द्रगुप्त भी उसे देख खड़ा हो जाता है । दोनों कुछ देर तक एक दूसरे को उसी प्रकार देखते रहते हैं । एकाएक हेलन घूमकर दाहनी ओर से जाने लगती है ।]

चन्द्रगुप्त—(जल्दी से) राजकुमारी, मेरे सौभाग्य से अचानक मिल गयीं । मैं चाहता हूँ आप कुछ क्षण ठहरने की कृपा करें ।

हेलन—(रुककर चन्द्रगुप्त की ओर घूमकर) क्यों, मुझसे आपको क्या काम है, भारत सम्राट ?

चन्द्रगुप्त—मुझे आपसे क्षमा माँगना है, राजकुमारी ।

हेलन—(आश्चर्य से) एक हारे हुए, एक विजित जाति की देश के एक तुच्छ स्त्री से भारत सम्राट को क्षमा माँगनी है !

चन्द्रगुप्त—(लंबी साँस लेकर) आप अपने को जो चाहें सो मान सकती हैं, परन्तु चन्द्रगुप्त आपको ऐसा नहीं मानता ।

[हेलन कोई उत्तर न देकर चन्द्रगुप्त की ओर देखती है और चन्द्रगुप्त हेलन की ओर । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

हेलन—(एकाएक) आप मेरे देश को पराजित देश नहीं मानते, आप यवन जाति को विजित जाति नहीं समझते ?

चन्द्रगुप्त—यूनान भारत विजय में सफल न हुआ होगा, यवन जाति के आततायी महत्वाकांक्षी अधिपति अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके होंगे, पर इससे आपका व्यक्तिगत क्या सम्बन्ध है ?

हेलन—मेरा ? (गर्व से) मैं यूनान देश की हूँ। यूनान मेरा देश है। मैं यवन जाति की हूँ। यवन जाति मेरी जाति है।

चन्द्रगुप्त—पर पर...मैंने आपके सम्बन्ध में जो कुछ सुना है, वह यदि सत्य है तो इस पराजय, इस विफलता से आपको तो हर्ष ही होना चाहिए।

हेलन—(आश्चर्य से) आपने मेरे सम्बन्ध में क्या सुना है ?

चन्द्रगुप्त—यह कि आप यवनों के आक्रमण के सर्वथा विरुद्ध थीं। आपको भारतीयों से सहानुभूति थी।

हेलन—यदि यह सच है तो आप मुझसे किस बात के लिए क्षमा माँगते हैं ?

चन्द्रगुप्त—(कुछ चकपका कर) क्षमा...क्षमा...इस बात के लिए माँगता हूँ, राजकुमारी, कि इस युद्ध में हमारी ओर से भी कई ऐसी बातें हुई हैं जो न होनी चाहिए थीं।

हेलन—आपने सुना है मैं यवनों के आक्रमणों के सर्वथा विरुद्ध थी, आपने सुना है कि मुझे भारतीयों से सहानुभूति थी, आपके मत मे इस युद्ध में भारतीयों की ओर से भी कई ऐसी बातें हुई हैं, जो न होनी चाहिए थीं ?

चन्द्रगुप्त—हाँ, राजकुमारी।

हेलन—(कुछ विचारते हुए मानो अपने आप से कह रही है) परन्तु आपने जो कुछ सुना है, वह असत्य है, भारत-सम्राट। मैं देशद्रोही नहीं हूँ। मैं अपनी जाति का अधिक से अधिक गौरव चाहने वाली हूँ। और आप...

आप यदि यह सोचते हैं कि भारतीयों की ओर से भी कुछ बुरी बातें हुई हैं, तो आप देशद्रोह करते हैं। यवनों ने भारत पर आक्रमण कर तथा भारतीयों पर अत्याचार कर कोई अनुचित बात नहीं की। भागते हुए यवनों पर सिन्ध और मकरान में धावा बोल, तथा उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दे, आपने भी सर्वथा उचित काम किया। वीरों का काम ही एक दूसरे से युद्ध करना है, एक दूसरे का सहार करना है। अभी तो ..अभी तो वीरता के परिमाण से, शूरता की दृष्टि से, आपका बहुत कार्य शेष है। यवनों ने आपके देश पर आक्रमण किया था, अतः आपको अभी यूनान पर आक्रमण करना है, भारत-सम्राट। . क्षमा...क्षमा आप किस बात के लिए माँग रहे हैं!...क्षमा माँगने की पुरुषों को ..पुरुषों को कोई आवश्यकता नहीं, थोडी भी नहीं। (शीघ्रता से दाहिनी ओर प्रस्थान)।

[चन्द्रगुप्त कुछ सोचते हुए सिर नीचा किये धीरे धीरे बाँई ओर जाता है।]

परदा उठता है

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—तक्षशिला के उत्तर में सिल्यूकस का शिविर

समय—प्रातःकाल

[पीछे की ओर पर्वतमाला तथा वन दृष्टिगोचर होता है। दोनों ओर दूर दूर तक यवन सेना के डेरों की पक्तियाँ दिखती हैं। निकट ही बाँई ओर सिल्यूकस के डेरे का कुछ बाहरी भाग दिखायी देता है। डेरे के सामने के मैदान में बहुत सी आसदियाँ रखी हैं। इनमें से एक पर सिल्यूकस बैठा है और दूसरी पर चाणक्य। सिल्यूकस सैनिक वेष में है और चाणक्य अपनी साधारण वेषभूषा में। चाणक्य के सामने लकडी के एक चौखटे में संसार का मानचित्र टँगा है और उसके हाथ में सन्धि-पत्र का मसौदा है। चाणक्य ध्यान-पूर्वक मसौदे को देख रहा है और बीच

बीच में मानचित्र को देखता जाता है। सिल्यूकस चाणक्य की ओर देख रहा है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—ठीक है, सम्राट, मुझे सन्धि-पत्र के सम्बन्ध में अब कुछ नहीं कहना है। सिन्धु के उत्तर में पामीर पर्वत-मालाओं तक के सारे प्रान्त तथा उसके देश और सिन्धु के पश्चिम दक्षिण में बाल्टीक, अराकोशिया एव गडरोशिया तक के समस्त भूखंड को मौर्य राज्य में मिलाकर आपने अपनी महान उदारता का ही परिचय नही दिया है, वरन आगे को यवनों का भारत पर आक्रमण नहीं होगा, इसका भी विश्वास दिला दिया है, किन्तु . किन्तु... सम्राट . (चुप हो जाता है।)

सिल्यूकस—किन्तु पर आप चुप क्यों हो गये, आर्य, कहिए और भी कुछ लेने की इच्छा है, क्या ?

चाणक्य—पृथ्वी नहीं, सम्राट, किन्तु कोई ऐसी वस्तु जिससे भारतीयों का भी यूनान पर आक्रमण कर सकना असंभव हो जाय। (कुछ रुककर) सम्राट, दो बार यवनों ने भारत पर आक्रमण किया, भारतवासियों की भी यूनान पर आक्रमण करने की इच्छा हो सकती है।

सिल्यूकस—यवन-साम्राज्य का इतना भाग ले लेने पर भी ?

चाणक्य—हाँ, सम्राट, राज्य और धन-प्राप्ति के लोभ की कदाचित् कोई सीमा नहीं है। एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की महत्वाकाक्षा भी कदाचित् कभी समाप्त नहीं होती। जीतने के पश्चात् यह इच्छा और बढती है और हारने के पश्चात् प्रतिकार लेने की भावना उदित होती है। युद्ध से सदा युद्ध का ही जन्म होता है। लेखनी द्वारा किये गये हस्ताक्षरों से युक्त सन्धि-पत्र का खड्ग के एक ही प्रहार से क्षण भर में टुकड़े टुकड़े किया जा सकता है। गत वर्षों के अनुभव के पश्चात् मैं तो अब इस निर्णय पर पहुँचा हूँ, सम्राट, कि स्थायी शान्ति सन्धि-पत्रों से नहीं, किन्तु प्रेम से ही हो सकती है।

सिल्यूकस—तो आप...आप क्या चाहते हैं, आर्य ?

चाणक्य—(सिल्यूकस की ओर अत्यधिक प्रेम पूर्वक देखते हुए) मैं...मैं

जो चाहता हूँ, सम्राट, ज्ञात नहीं, आपको रुचिकर जान पड़ेगा अथवा नहीं, किन्तु ससार के इन दो सबसे महान, सबसे सभ्य, सबसे सुसंस्कृत यूनान और भारत के भविष्य के कल्याण के लिए, ससार की भविष्य की शान्ति के लिए वह प्रस्ताव तो मुझे आपके सामने रखना ही होगा।... (कुछ रुककर) मैं चाहता हूँ, सम्राट, यवन राजकुमारी हेलन और भारत सम्राट चन्द्रगुप्त का विवाह।

सिल्यूकस—आर्य आर्य...(सिर नीचा कर लेता है।)

चाणक्य—मैं आप पर किसी प्रकार का दबाव डालकर आपसे यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं कराना चाहता। आप विजित हैं और चन्द्रगुप्त जेता; इसलिए आप मेरे इस कथन को पूर्ण करने के लिए बाध्य नहीं हैं। चन्द्रगुप्त युद्ध में जीते हैं, मैं आपकी उससे भी बड़ी विजय कराना चाहता हूँ। आप इस मार्ग से चन्द्रगुप्त के पिता तुल्य हो जायेंगे। ससार के इन दो महान राष्ट्रों के प्रेम-बन्धन से विश्व और विश्व का मानव-समाज स्थायी शान्ति का सुख भोगेगा।

[सिल्यूकस कोई उत्तर न देकर उसी प्रकार सिर नीचा किये बैठा रहता है। चाणक्य सिल्यूकस की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—सम्राट, यह विवाह राजकुमारी हेलन और सम्राट चन्द्रगुप्त का नहीं, किन्तु पूर्व और पश्चिम का होगा; इन दो दिशाओं मे सबसे महान दो राष्ट्रों का होगा। विश्व के इतिहास में आज पर्यन्त इससे महान, इससे महत्वशाली कोई विवाह नहीं हुआ है।

[सिल्यूकस उसी प्रकार बैठा रहता है। चाणक्य उसकी ओर देखता रहता है। कुछ देर फिर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—(अत्यधिक विनम्रता से) क्या निर्णय करते हैं, सम्राट ?

सिल्यूकस—(धीरे धीरे सिर उठाते हुए) क्या कहूँ, आर्य, (कुछ रुककर) पर नहीं, मुझे विश्वास हो गया है कि आप सचमुच ही दोनों देशों की, विश्व की, भलाई चाहते हैं। मैं आपसे कोई बात छिपाना नहीं चाहता। एक समय हेलन स्वय चन्द्रगुप्त से विवाह करने के लिए इच्छुक थी।

चाणक्य—और अब ?

सिल्यूकस—कह नहीं सकता।

चाणक्य—(खड़े होते हुए) आप राजकुमारी से पूछें, सम्राट ; उन्हें इस विवाह का क्या परिणाम होगा यह समझावें ; उन्हें इस विवाह के लिए तैयार करें । मैं अभी चन्द्रगुप्त को लेकर सेवा मे उपस्थित होता हूँ।

सिल्यूकस—अच्छी बात है।

[चाणक्य का दाहनी ओर और सिल्यूकस का बाँईं ओर अपने डेरे में प्रस्थान। कुछ ही देर में सिल्यूकस और हेलन फिर बाहर आते हैं।]

हेलन—परन्तु मैं ..मै तो, पिता जी. विवाह करना ही नहीं चाहती। पुरुष आततायी हैं। संसार का समस्त पुरुष वर्ग ..

[चाणक्य का चन्द्रगुप्त के साथ प्रवेश।]

चाणक्य—(मुस्कराते हुए) और स्त्री वर्ग यदि उसे न सुधारेगा तो...तो संसार का कल्याण कैसे होगा ?

[हेलन चौंककर चाणक्य और चन्द्रगुप्त को देखती है। और सिर नीचा कर लेती है।]

सिल्यूकस—(चन्द्रगुप्त से) बैठिए सम्राट । (चाणक्य से) बैठिए, आर्य।

[सब लोग बैठ जाते हैं।]

चाणक्य—(सिल्यूकस से) विश्व की शान्ति के लिए भारत-सम्राट यवन सम्राट से भिक्षा माँगने आये हैं—सम्पत्ति की नहीं, राज्य की नहीं, शान्ति के उपाय की, और . और...(हेलन से) राजकुमारी, आपके तो वे शरणागत हैं, शरणागत।

[सिल्यूकस और हेलन कुछ नहीं बोलते। हेलन सिर नीचा किये हुए बैठी

रहती है। सिल्यूकस उसकी ओर देखता है, चन्द्रगुप्त कनखियों से हेलन की ओर, और चाणक्य कभी किसी की ओर और कभी किसी की ओर। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—(कुछ देर पश्चात्) अनुमान कर सकता हूँ कि आप क्या सोच रही हैं, राजकुमारी। आप कदाचित् सोचती होंगी कि यवन सम्राट से उनकी हार के कारण, यह माँग की जा रही है। आप कदाचित् अपने पिता, अपनी जाति, और अपने देश के लिए इस प्रस्ताव को अपमानजनक समझती होंगी, परन्तु . परन्तु...राजकुमारी, आप यदि यह सब विचार कर रही हैं तो आप भयकर भूल में हैं।

हेलन—(सिर उठाकर) भूल ! भूल कैसी ? यदि मैं यह सोचती ही होऊँ तो यह तो सत्य बात है।

चाणक्य– नहीं, राजकुमारी, कदापि नहीं।

हेलन—कदापि नहीं ?

चाणक्य—नहीं, कदापि नहीं। यह तो यवन सम्राट की विजय का प्रस्ताव है। इस विवाह के पश्चात् तो चन्द्रगुप्त के पिता तुल्य होने के कारण सच्चे जेता यवन सम्राट हो जाते हैं। और फिर.. और फिर . मैंने तो सुना है कि यवन और भारतीय यूनान और भारत, इन भेद भावों में आपका विश्वास ही नहीं है। आप तो सारे मानव समाज को एक जाति, सारे विश्व को एक देश मानती हैं। मेरा यह प्रस्ताव तो आपके सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत करता है। एक जाति के निर्माण का बीज बोता है। विश्व को एक देश बनाने का आरम्भ करता है।

[हेलन कोई उत्तर नहीं देती। सब लोग हेलन की ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चाणक्य—(हेलन से) आपकी ही स्वीकृति की आवश्यकता है, राजकुमारी, आपको सुनकर हर्ष होगा कि सम्राट सिल्यूकस को इस ब्राह्मण का यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकृत है।

[हेलन के नेत्रों में आँसू आ जाते है। वह सिर उठा अपने पिता की ओर देखती है।]

सिल्यूकस—हाँ, बेटी, मुझे इस प्रस्ताव में थोड़ी भी आपत्ति नहीं है। मैं तुम्हारे सम्राट को तेरे लिए हर प्रकार से योग्य वर मानता हूँ।

[हेलन फिर मुख नीचा कर लेती है।]

चाणक्य—(सिल्यूकस से) सम्राट, हर्ष की बात है कि राजकुमारी को मेरा प्रस्ताव स्वीकृत है। (कुछ रुककर) सम्राट अब यह ब्राह्मण भारत सम्राट और भारत साम्राज्य दोनों को ही आपके हाथों में सौंप आप सबसे विदा लेना चाहता है।

चन्द्रगुप्त—(नेत्रों में आँसू भरकर) आप हमें छोड़ रहे हैं, गुरुदेव ?

चाणक्य—मेरा वर्तमान कार्य अब निश्चयपूर्वक समाप्त हो गया, वत्स ! तुम्हारे अभिषेक के समय कदाचित् वह समाप्त न हुआ था। उससे भी महान दो देशों की इस मैत्री, विश्व की शान्ति का कार्य शेष था। अब मुझे सन्यास ग्रहण करने दो। जिस आश्रम को अब मैं ग्रहण करने जा रहा हूँ उसमें न देश भिन्नता है और न जाति वैषम्य। मेरे लिए अब सारा विश्व एक देश और मानव समाज एक जाति होगा। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वभूत-हितेरतः' ये दो वाक्य मेरे भविष्य के जीवन का पथ प्रदर्शन करेंगे। इस निर्लिप्त अवस्था में ससार की राज्य-व्यवस्था सुचारु रूप से संचालन कराने के निमित्त मैं कदाचित् कोई ग्रन्थ भी लिख सकूँ। (कुछ रुककर सिल्यूकस से) सम्राट यवन और भारतीय दोनों ही पद्धतियों से चन्द्रगुप्त और राजकुमारी का विवाह हो। चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक के अवसर पर मैंने इकतालीस दिवसों का जो उत्सव घोषित किया था, वह तो अब केवल मौर्य-साम्राज्य में नहीं पर यवन साम्राज्य में भी होगा। क्यों, महाराज सिल्यूकस ?

[चाणक्य खड़ा होता है। सिल्यूकस, चन्द्रगुप्त और हेलन भी खड़े होते हैं। चन्द्रगुप्त और हेलन चाणक्य के पैरों में सिर झुकाते हैं। सिल्यूकस और चाणक्य हाथ मिलाते हैं।]

यवनिका

उपसंहार

स्थान—पश्चिमोत्तर भारत में कुनार और सिन्धु नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश में हिमालय पर्वत का तीन शृंगों वाला 'मोर' शिखर

समय—प्रातःकाल

[दृश्य वैसा ही है जैसा पहले अंक के पहले दृश्य में था। पर्वत के नीचे की समभूमि पर एक छोटा सा सुन्दर मण्डप बना है। काष्ठ के खुदावदार स्तंभों पर, जिन पर सुवर्ण का काम है, मण्डप की केशरी रंग की जरीदार छत तनी हुई है। उसके चारों ओर पत्रों और पुष्पों की मंगल बदनवार बाँधी गयी है। चारों कोनों पर कदली स्तंभ और उनके निकट सुवर्ण के मंगल-कलश रखे हुए हैं। कलशों पर रत्नजटित पात्रों पर दीपक जल रहे हैं। इन्हीं के निकट सुवर्ण की धूपदानियों से धूप का धूम उठ रहा है। नेपथ्य से पंच महावाद्य श्रृंग, रम्मट, शंख, भेरी और जयघंट की धीमी ध्वनि आ रही है। मंडप के बीच में छोटी सी यज्ञ वेदी में अग्नि है। चन्द्रगुप्त और हेलन अग्नि की परिक्रमा कर रहे हैं। चन्द्रगुप्त सुनहरी काम से जगमगाता हुआ केशरी रंग का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए है। सिर पर विवाह का रत्नजटित 'मौर' है। कानों में कुण्डल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर, हाथा में बलय और और उंगलियों में मुद्रिकाएँ है। सारे आभूषण रत्नों से जगमगा रहे हैं। हेलन का सारा वेष भारतीय हो गया है। वह सुनहरी काम से जगमगाती हुई केशरी रंग की साड़ी पहने है तथा उसी प्रकार का वस्त्र वक्षस्थल पर बाँधे है। उसके सिर पर भी विवाह का मौर है। ललाट पर वह लाल बिन्दु लगाये है। वह भी कर्ण फूल, हार, भुजबन्द, कंकण और मुद्रिकाएँ पहने हैं। सब आभूषण रत्नों से देदीप्यमान हैं। अग्नि वेदी के चारों ओर ब्राह्मण वेदमंत्रों का उच्चारण कर रहे हैं। मंडप के बाहर दाहिनी ओर सिल्यूकस और यवन सेनानायक आदि खड़े हैं और बाँईं ओर बहुत से भारतीय। सिल्यूकस की वेषभूषा वैसी ही है जैसी अलक्षेन्द्र की तक्षशिला के सभाभवन में थी। शेष यवनों की भी उसी से मिलती जुलती है। भारतीय उत्तरीय और अधोवस्त्र पहने हैं। सब आभूषण धारण किये हैं। परिक्रमा पूर्ण कर चन्द्रगुप्त और हेलन सिल्यूकस के निकट आकर मस्तक झुका प्रणाम करते हैं। सिल्यूकस दोनों के मस्तकों पर हाथ रखकर दोनों को भारतीय प्रथा से आशीर्वाद देता है। चाणक्य का प्रवेश। चाणक्य ने सन्यास ग्रहण कर

लिया है अतः उसके शरीर पर अब शिखा सूत्र नहीं हैं। वह गेरुए रंग का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए है। चाणक्य को देख कर सब उसे प्रणाम करते हैं। चाणक्य दोनों हाथ उठा सबको आशीर्वाद देता है। चन्द्रगुप्त और हेलन आगे बढ़कर चाणक्य के चरण-स्पर्श करते हैं वह दोनों के सिरों पर हाथ रखता है। उसके मुख पर अत्यन्त प्रसन्नता और शान्ति के भाव हैं। वह बड़े हर्ष से कभी चन्द्रगुप्त और कभी हेलन की ओर देखता है।]

यवनिका

समाप्त